Chapter. 5

अध्याय - ५

हिन्दी पत्र-साहित्य में शिल्प और शैली

अध्याय : ५

हिन्दी पत्र-साहित्य में शिल्प और शैली

शिल्प और शैली का परस्पर सम्बन्ध :

शिल्प या शिल्प-विधि अंग्रेजी के "टेकनीक" शब्द का हिन्दी-अनुवाद है । इसका तात्पर्य रचना-पद्धति से है । बृहत् हिन्दी कोश के अनुसार "शिल्प से अभिप्राय हाथ से कोई वस्तु तैयार करने अथवा दस्तकारी या कारीगरी से है ।"[१] इस दृष्टि से शिल्प-विधि का अर्थ होगा किसी चीज के बनाने या रचने का ढंग या तरीका । साहित्य अथवा कला के सन्दर्भ में इसका अर्थ होता है साहित्यिक कृति अथवा कलात्मक वस्तु रचने का ढंग या तरीका । कला की रचना में जिन रीतियों और विधियों का उपयोग किया जाता है, वे ही उस कला की शिल्प-विधि के नाम से पुकारी जाती हैं ।

"शैली" शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के "शील" शब्द से मानी जाती है । "संस्कृत शब्दार्थ- कौस्तुभ" में "शैली" शब्द के अनेक अर्थ दिये गये हैं - जैसे, लिखने का ढंग, वाक्यरचना का प्रकार, चाल, ढब, ढंग, परिपाटी, तर्ज, तरीका, रीति, रस्म, प्रथा आदि ।[२] हिन्दी में "शैली" शब्द का प्रयोग अंग्रेजी के "स्टाइल" शब्द के समानार्थक रूप में होता है । भारतीय वाङ्मय में "प्रणाली", पद्धति" या "ढंग" के अर्थ में "रीति" शब्द का प्रयोग मिलता है, किन्तु हिन्दी के कतिपय विद्वान् "स्टाइल" शब्द के पर्याय के रूप में "रीति" शब्द का प्रयोग अनुचित समझते हैं । पं० करुणापति त्रिपाठी का मत है कि -"गुणों के आधार पर की गई विशिष्ट - पद-रचना रूप रीति, शैली से भिन्न है ।"[३] इसके विपरीत पं० बलदेव उपाध्याय मानते हैं कि "अंग्रेजी में रीति (मार्ग) के लिए स्टाइल" शब्द प्रयुक्त

---

१ "बृहत् हिन्दी कोश" (प्र०सं०), संपा० कालिकाप्रसाद, पृ० १३३४ ।

२ "संस्कृत शब्दार्थ-कौस्तुभ" (च०सं०), संपा० द्वारका प्रसाद शर्मा तथा तारिणीश झा , पृ० ११७० ।

३ "शैली", (प्र०सं०), पृ० ११९-१२० ।

होता है ।[1] डा० गणपतिचन्द्र गुप्त ने "रीति" और "शैली" का अंतर स्पष्ट करते हुए लिखा है कि "किसी भी कार्य की सामान्य पद्धति 'रीति' है जब कि व्यक्ति-विशेष से सम्बन्धित विशेष पद्धति 'शैली' है ।"[2]

शैली में लेखक के व्यक्तित्व की प्रधानता को स्वीकार करने के अतिरिक्त, इसे अभिव्यक्ति का विशिष्ट ढंग भी कहा गया है ।[3] इस अर्थ में शैली से अभिप्राय रचनाकृति के बाह्य परिधान से है जिसका निर्धारण भाषा और शब्दों के विशिष्ट प्रयोग द्वारा होता है । शैली में अभिव्यक्ति की विशिष्टता तथा भाषा के रूप-चमत्कार का संयोग होने के कारण ही भारतीय मनीषियों ने साहित्य-सृजन के अन्तर्गत शैली को चौथे तत्व के रूप में स्वीकार किया है ।

शिल्प और शैली के उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि दोनों का सम्बन्ध रचना के अभिव्यक्ति-पक्ष से है । इनमें अंतर यही है कि शिल्प-विधि का सम्बन्ध अभिव्यक्ति एवं रूप-रचना की समस्त प्रक्रियाओं से है, जबकि शैली का सम्बन्ध केवल अभिव्यक्ति के प्रकार विशेष से है । दूसरे शब्दों में जहां शिल्प-विधि का अध्ययन सामान्य धरातल पर किया जाता है, वहां शैली का अध्ययन विशिष्ट धरातल पर किया जाता है । श्री व्रजभूषण पाण्डेय ने शिल्प और शैली का सम्बन्ध निम्नलिखित दो रूपों में स्पष्ट किया है :-

१ - शिल्प के किसी अंग विशेष के रूप में शैली का कोई अंग भी विशेष प्रत्यक्ष होता है । इस शिल्प के अंश विशेष को शैली अंग विशेष प्राणवान और सार्थक बनाता है ।

२ - शैली का अधिकांश भाग सूक्ष्मरूप से शिल्प की समष्टि में समाया रहता है । यहां शिल्प और शैली का व्याप्य और व्यापक सम्बन्ध रहता है । इस रूप में शैली का समष्टि शिल्प के समष्टि को प्राणवान और सार्थक बनाता है ।

---

१ "भारतीय साहित्य शास्त्र", द्वितीय खण्ड (सं० २०१२ वि०), पृ० २१३ ।

२ "साहित्य शैली के सिद्धान्त" (१९७१), पृ० २७ ।

३ "Style is the technique of expression",
Middleton Murray, "The Problem of Style",
P. 5.

पहला सम्बन्ध शरीर और आंख तथा शरीर और कान के समान है और दूसरा सम्बन्ध शब्द और अर्थ की तरह है । जिस प्रकार शब्द में अर्थ समाया हुआ है उसी प्रकार शिल्प में शैली समायी हुई रहती है । किन्तु जिस प्रकार शब्द और अर्थ की सत्ता अलग-अलग भी है इसी प्रकार इन दोनों की सत्ता भी अलग-अलग है ।"[1] इस प्रकार शिल्प और शैली के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध है ।

हिन्दी पत्र-साहित्य में शिल्प और शैली :

पत्र-साहित्य के अध्ययन में शिल्प और शैली का प्रश्न कम महत्वपूर्ण नहीं है । जैसा कि श्री मार्तण्ड उपाध्याय ने कहा है," पत्र लिखना भी एक कला है । जो बात व्यक्ति अपने सामने बात-चीत में नहीं कह सकता या नहीं कहना चाहता, उसे पत्र द्वारा बड़ी कुशलता से कह देता है । कई बार कही बात का उतना प्रभाव नहीं पड़ता, जितना लिखी बात का पड़ता है ।"[2]

इस दृष्टि से देखें तो पत्र-साहित्य में भी अन्य कला-रूपों की तरह शिल्प और शैली का समावेश होता है । यद्यपि पत्र-लेखक पत्र लिखते समय उसे कला या साहित्य समझकर नहीं लिखता, किन्तु लेखक का प्रयोजन, उसकी रुचि, योग्यता आदि तत्व ही किसी पत्र को कला की वस्तु बनाकर सुरक्षित रख सकते हैं । इस प्रकार शिल्प और शैली के कारण ही पत्रों में मधुरता और मोहकता आ जाती है । आचार्य किशोरीदास वाजपेयी के अनुसार -

"साधारण चीजों में मनुष्य जब कुछ अद्भुत मोहकता पैदा कर देता है, तो उसे "कला" का नाम मिल जाता है । कागज और रंग आदि साधारण चीजें हैं - सब लोग काम में लाते हैं, परन्तु "चित्र-कला"

---

१ "कला : शिल्प : शैली" (लेख), सम्मेलन पत्रिका , कला- अंक , सन् १९७२, पृ० ३६९ ।

२ "स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी पत्र-साहित्य" (लेख) स्वतंत्रा रजत-जयन्ती-अभिनन्दन ग्रंथ, पृ० ६०० ।

उन्हीं चीज़ों का विशिष्ट प्रयोग है ।"[1] इसी प्रकार हम कह सकते हैं कि पत्र तो प्राय: सभी व्यक्ति लिखते हैं, किन्तु प्रभावपूर्ण पत्र लिखना एक कला है । इसके लिए अध्ययन और अभ्यास की आवश्यकता है । पं० कृष्णकान्त मालवीय ने "मनोहर पत्र" शीर्षक पत्र-संग्रह की भूमिका में इसी तथ्य की ओर इंगित किया है -

"पत्र-लेखन भी एक सुन्दरकला है । हम सब ही बोलते हैं, जबान सबके पास है, शब्दों का भण्डार भी सबके पास थोड़ा-बहुत है, किन्तु सब वाक्पटु नहीं होते । विद्वान् और पंडित होने से कोई अच्छी बातें करनेवाला (Conversationalist) नहीं हो जाता । ठीक इसीतरह कवि होने, लेखक होने या भाषा पर अधिकार रखने से ही कोई सुन्दर पत्रों का लिखनेवाला नहीं हो सकता । पत्र-लेखन एक कला है और जिस तरह अन्य कलाओं पर संसार में अधिकार प्राप्त किया जाता है उसी तरह से इस कला पर भी अधिकार प्राप्त किया जा सकता है ।"[2]

इससे स्पष्ट होता है कि अन्य कलाओं के समान पत्र-लेखनकला में भी शिल्प-विधान की आवश्यकता रहती है- भले ही समानरूप से उसका प्रयोग न किया गया हो । बाबू गुलाबराय ने भी यही मत व्यक्त किया है-

"यद्यपि पत्र सभी लिखते हैं तथापि उनमें थोड़ा शिल्प-विधान रहता है, चाहे उनका सचेतन प्रयोग न हो । पत्र का सबसे बड़ा टेकनीक यही कि अपने पाठक पर दूर बैठे हुए भी उसके द्वारा उतना ही प्रभाव पड़ सके जितना कि सामने वार्तालाप करने पर पड़ता है । बात को थोड़े शब्दों में अधिक-से-अधिक स्पष्टता देना पत्र की सबसे बड़ी मांग है । पत्रों में कुछ लोग तो अपना सारा व्यक्तित्व उड़ेल देना चाहते हैं और कुछ उनको निर्वैयक्तिक तथा रंगीनी से खाली रखना चाहते हैं । इस सम्बन्ध में भी मध्यम मार्ग का अनुसरण श्रेयस्कर है ।"[3]

१" कला और लेखन-कला" (लेख), सम्मेलन पत्रिका, कला-अंक, पृ० ३७२ ।

२"मनोहर पत्र "(१९५६), भूमिका (झ) ।

३"काव्य के रूप"(१९५४), पृ० २६१ ।

इस प्रकार पत्रों में शिल्प-विधान तो रहता है, किन्तु उनका सचेतन प्रयोग नहीं होता । यही कारण है कि लेखक के सहज और मुक्तरूप की स्पष्ट झलक हमें उसके पत्रों में ही मिलती है । पत्र-साहित्य की इस विशेषता की ओर संकेत करते हुए डा० रामविलास शर्मा ने लिखा है-

"पत्र-संग्रह ऐसा नाटक है जो योजना बनाकर किसी-कलाकार द्वारा नहीं रचा गया । शायद इसीलिए वह अनेक नाटकों से अधिक महत्व-पूर्ण, अधिक आकर्षक भी है ।"[१]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हिन्दी पत्र-साहित्य में शिल्प और शैली का अध्ययन निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत प्रस्तुत किया जा सकता है :

(क) हिन्दी पत्र-साहित्य में लेखन-पद्धति का वैविध्य ,
(ख) हिन्दी पत्र-साहित्य में भाषा-विधान ,
(ग) हिन्दी पत्र-साहित्य में गद्य की विविध शैलियां और
(घ) हिन्दी पत्र-साहित्य में भावगत शैलियां ।

अब हम यहां विस्तार से प्रत्येक का विवेचन करेंगे :-

(क) हिन्दी पत्र-साहित्य में लेखन-पद्धति का वैविध्य :

पत्र-लेखन की अपनी अलग पद्धति है और उसमें लिखनेवाले तथा पानेवाले की सामाजिक स्थिति के अनुरूप अनुनय-विनय तथा शालीनता भी होती है । जिस प्रकार प्रत्येक कला-रूप की कुछ रूढ़ियां होती हैं उसी प्रकार पत्र-लेखन की भी कुछ रूढ़ियां है और इनमें युगानुसार कुछ परिवर्तन भी होते रहे हैं । प्रत्येक युग में पत्र लिखने का ढंग सिखाने के लिए पत्र-लेखन कला के पंडितों द्वारा कुछ पुस्तकें लिखी हैं । पाठशालाओं में छात्रों को पत्र-लेखन कला की शिक्षा देने की परिपाटी भी प्राचीनकाल से चली आ रही है । तात्पर्य यह है कि पत्र लिखने के लिए कुछ सर्वसामान्य सिद्धांतों की जानकारी आवश्यक है ।

हिन्दी में प्राचीनकला से वर्तमान-युग तक का जो पत्र-साहित्य प्रकाश में आया है, उसमें हमें पत्र-लेखन की दो पद्धतियां मिलती हैं- एक

---

१ "निराला की साहित्य-साधना भाग-३" (१९७६), भूमिका, पृ० २ ।

प्राचीन पद्धति और दूसरी नवीन पद्धति । पत्र-लेखन की प्राचीन पद्धति संस्कृत की अनुवर्तिनी है और नवीन पद्धति पश्चिम से प्रभावित है । यद्यपि आधुनिक युग के आरम्भ से ही नवीन पद्धति में पत्र लिखना आरम्भ हो गया था, किन्तु आधुनिक युग के अनेक लेखकों के पत्रों में प्राचीन पद्धति का संस्पर्श मिल जाता है ।

रचना-विधान की दृष्टि से प्रत्येक पत्र के सामान्यत: चार अंग माने गये हैं :- (१) शीर्षक या सिरनामा, (२) प्रारम्भ, (३)विषय वस्तु और, (४) अंत । शीर्षक या सिरनामा पत्र का सबसे ऊपरी हिस्सा है । प्राचीन पत्र-लेखन पद्धति में इस हिस्से में मंगलसूचक शब्द, अंक और इष्टदेव के नाम का निर्देश होता था । नवीन पद्धति में इस भाग में पत्र प्रेषक का पूरा पता तथा तिथि का निर्देश दिया जाता है । आधुनिक युग के कुछ पत्रों में मंगलसूचक शब्द का प्रयोग भी मिलता है । पत्र के प्रारंभ में प्रेषक और प्राप्तिकर्ता के बीच होनेवाले परस्पर सम्बन्ध और सम्मान व्यवहार के अनुसार सम्बोधन-अभिवादन के शब्द प्रयुक्त होते हैं । पत्र का तीसरा भाग विषय महत्वपूर्ण है । पत्र-पद्धति में सिरनामा , प्रारम्भ और अंत एक दृष्टि से परम्परागत नियमों से युक्त है किन्तु विषय के सम्बन्ध में और उसे प्रतिपादन करने की पद्धति में शायद ही कोई नियम बनाया जा सकता है । अत: विषय और उसे प्रतिपादन करने की पद्धति में पर्याप्त विविधता लक्षित होती है । कुछ औपचारिक पत्रों की पद्धति की विविधता में समानता मिल सकती है । पत्र के अंत में अभिनिवेदन के शब्द और प्रेषक के हस्ताक्षर रहते हैं । प्राचीन पत्र-लेखन पद्धति में तिथि का निर्देश अंत में दिया जाता था । हस्ताक्षर के बाद यदि कोई बात लिखने से छूट गयी हो तो पत्र के नीचे या हाशिये में लिख दी जाती है । नवीन पद्धति में छूटी हुई बात या आवश्यक सूचना का संकेत 'पुनश्च' शब्द लिखकर दिया जाता है । प्राचीन पद्धति में इस शब्द का प्रयोग नहीं मिलता

विषय-विस्तार को छोड़कर पत्र के उपर्युक्त तीनों अंगों को स्थिर अंग माना जाता है, किन्तु प्रत्येक युग की पत्र-लेखन पद्धति में इन अंगों में विविधता पाई जाती है । अत: यहां इन अंगों की लेखन-विधि के वैविध्य पर प्रकाश डाला जाता है ।

(१) शीर्षक या सिरनामा लिखने की रीति में वैविध्य :

जैसा कि ऊपर बताया गया है, शीर्षक या सिरनामा पत्र का सबसे ऊपरी हिस्सा है । प्राचीन पत्र-लेखन पद्धति में इस हिस्से में मंगलसूचक शब्द, मंगलसूचक अंक और इष्टदेव का नाम लिखा जाता था । इन शब्दों में पर्याप्त वैविध्य रहता था । अधिकतर पत्रों के ऊपरी हिस्से में मंगलसूचक "श्री" शब्द लिखा गया है । राजस्थान के जैन महात्माओं के प्राचीन पत्रों में शीर्षक के स्थान पर "श्री" शब्द लिखा हुआ मिलता है ।[१] डा० काशिनाथ शंकर केलकर द्वारा संगृहीत मराठी क्षेत्र से सम्बन्धित १८-वीं शती के २०८ हिन्दी पत्रों में से लगभग ५५ पत्रों पर "श्री" अक्षर मिलता है ।[२] इन पत्रों में "१ श्री" लिखने के तीन उदाहरण देखे जा सकते हैं ।[३] प्राचीनकालीन पत्रों में मंगलसूचक अक्षर और अंक के अतिरिक्त पत्र-लेखक के इष्टदेव के नाम का संकेत भी मिलता है । महाराजा छत्रसाल के अनेक पत्रों पर "श्री कृस्नोजयति" शब्द का प्रयोग मिलता है ।[४] इसी प्रकार मराठा शासकों तथा सेना-नायकों के पत्रों में ऊपरी हिस्से के मध्यभाग में "श्रीरामजू",[५] "श्रीराधेकृस्नजू",[६] "श्रीगणेशजू",[७] आदि इष्टदेवों के नाम अंकित हैं ।

आधुनिकयुग के पत्रों में भी मंगलसूचक शब्द और इष्टदेव के नामों का उल्लेख मिलता है । स्वामी दयानन्द सरस्वती के अनेक पत्रों के ऊपरी हिस्से के मध्य में "ओ३म्" शब्द अंकित हुआ है ।[८] भारतेन्दु हरिश्चन्द्र अपने बहुत-से पत्रों पर ।।श्री कृष्णा ।। शब्द लिखते थे ।[९] प्रसिद्ध आर्य-समाजी लेखक नाथूराम शंकर शर्मा[१०] तथा पद्मसिंह शर्मा के पत्रों के सबसे

---

१ "राजस्थान के कुछ प्राचीन पत्र", शिवसिंह चोयल, सम्मेलन पत्रिका, पौष - ज्येष्ठ १८८८ शक, पृ० १५० ।

२ "१८वीं शती के हिन्दी पत्र" (१९७०), पृ० २३७ । ३ -वही- ।

४ "ऐतिहासिक प्रमाणावली और छत्रसाल" (१९७५), पृ० ७९ ।

५ "१८ वीं शती के हिन्दी पत्र", पृ० ३७८ । ६ - वही, पृ० ३७५ ।

७ - वही, पृ० ३७२ ।

८ "ऋषि दयानन्द का पत्र-व्यवहार" भाग-२ (सं० १९९२वि०), पृ० ११९ ।

९ "भारतेन्दु-ग्रंथावली भाग-३" (सं० २०१०वि०) पृ० ९६७-६९ ।

१० "स्वर्गीय पद्मसिंह शर्मा का पत्र-संग्रह," भारतीय साहित्य, जुलाई-१९६१, पृ० १५४-७० ।

पद्मसिंह शर्मा[1] के पत्रों के सबसे ऊपरी हिस्से में "ओम्" शब्द देखने को मिलता है। पं० मदनमोहन मालवीय तथा बाबू बालमुकुन्द के पत्रों के ऊपरी भाग में "श्री:" शब्द लिखा हुआ है।[2] श्रीराधाकृष्णदास,[3] पं० जनार्दन झा[4] आदि के पत्रों के ऊपर "श्रीहरि:" शब्द लिखे रहते थे। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के प्राय: सभी पत्रों के ऊपर "श्रीराम" लिखा हुआ मिलता है।[5] पं० माखनलाल चतुर्वेदी के कई पत्रों के ऊपर "श्रीगोपाल" शब्द अंकित हैं।[6] इस प्रकार पत्रों के शीर्षक में लिखे जाने वाले मंगलसूचक शब्दों तथा इष्टदेवताओं के नामों में पर्याप्त विविधता मिलती है। इन शब्दों से हमें पत्र-लेखक की आस्तिकता तथा देवता-विशेष में उसकी श्रद्धा-भक्ति का परिचय मिलता है।

आधुनिक पत्र-लेखन पद्धति में शीर्षक या सिरनामावाले ऊपरी हिस्से के दाहिने कोने में पत्र-प्रेषक के पता एवं तिथि का उल्लेख होता है जिससे पत्र-प्राप्तकर्ता को पत्रोत्तर देने में सुविधा रहती है। प्राचीन पत्र-लेखन पद्धति में पत्र-प्रेषक का पता अलग से नहीं दिया जाता था। इसमें तिथि का संकेत भी पत्र के अंत में रहता था। आधुनिक युग के कुछ पत्रों में भी तिथि-निर्देश पत्र के अंत में दिया गया है। उदाहरण स्वरूप स्वामी दयानन्द सरस्वती,[7] भारतेन्दु हरिश्चन्द्र,[8] बाबू बालमुकुन्द गुप्त आदि के पत्र देखे जा सकते हैं।

इस प्रकार शीर्षक और सिरनामा लिखने की रीति में पर्याप्त वैविध्य मिलता है। प्राचीन तथा अर्वाचीन पत्रों के ऊपरी हिस्से के मध्य भाग में अंकित मंगलसूचक, शब्दों, अंकों तथा इष्ट-देवों के नामों से लेखक की धार्मिकता के साथ पत्रों की महत्ता भी प्रकट होती है।

---

१ "द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र" (१९५८), पृ० ७७-१३६।
२ "बालमुकुन्द गुप्त-स्मारक-ग्रंथ" (१९५०), पृ० ३२-३३ तथा पृ० १२३।
३ -वही-, पृ० ५७।
४ "पौराणिकी" (स्तम्भ), ना०प्र०प०, सं० २०२२ वि०, वर्ष-७०अंक-३ पृ ६७।
५ "प्रसाद के नाम पत्र" (१९७६), पृ० ८२-९२।
६ "स्वर्गीय पंडित माखनलाल चतुर्वेदी के पत्र", सम्मेलन पत्रिका, भाग-५६, सं० २-३, पृ० १६-२०।
७ "कृष्ण दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन" (१९५५), पृ० ७९-११४।
८ "भारतेन्दु-ग्रंथावली भाग-३ (सं० २०१०), पृ० १७०-७३।

(२) सम्बोधन तथा अभिवादन की विधि में वैविध्य :

पत्र सामान्यत: भेजनेवाले की ओर से पानेवाले के लिए प्रथम पुरुष में प्रत्यक्ष सम्बोधन होता है । पत्रों में सम्बोधन और अभिवादन की विशिष्ट विधि होती है । सम्बोधन तथा अभिवादन के शब्दों के आधार पर प्रेषक तथा प्राप्तिकर्ता के बीच होनेवाले परस्पर सम्बन्ध तथा सम्मान-व्यवहार का स्पष्टीकरण हो जाता है । अंग्रेजी पत्रों में प्राय: छोटे-बड़े सबके लिए 'माय डीयर' शब्द का प्रयोग होता है, परन्तु हिन्दी पत्रों में ऐसा नहीं होता । हमारे यहां प्रेषिती के प्रति सम्बन्ध के अनुसार ही सम्बोधन और अभिवादन के विशिष्ट शब्दों का प्रयोग होता है ।

प्राचीन पत्र-लेखन पद्धति के अनुसार किस व्यक्ति को किन-किन शब्दों से सम्बोधित करना चाहिए, इसका विस्तार से विवरण वररुचिकृत 'पत्र-कौमुदी' के 'पदन्यास' विभाग के अन्तर्गत दिया गया है ।तदनुसार राजपत्रादि में राजा को 'महाराजाधिराज', 'दानशील', 'सच्चरित', 'कल्पवृक्ष स्वरूप' इत्यादि यथा योग्य पदन्यास का विधान है । मंत्री के पत्र में गुणानुसार 'प्रवर', 'प्राज्ञ', 'सच्चरितादि', पंडित के पत्र में संख्या-पूर्वक प्रणाम, शास्त्रार्थ निपुण इत्यादि, गुरु के पत्र में चरण में प्रणति पूर्वक संख्यासिद्धांत निपुणादि, स्वामि के पत्र में सनमस्कार प्राणप्रियादि, माता के पत्र में साध्वी, सच्चरितादि, तथा प्राणप्रिया प्रभृति पद, पुत्र के पत्र में आशीर्वाद पूर्वक प्राणपुत्र इत्यादि, पितृपत्र में प्रभुवर्य नमस्कार, सच्चरितादि और संन्यासियों के पत्र में सकलवांछा विनिर्मुक्त सर्वशास्त्रार्थ पारंग इस प्रकार पदविन्यास करना चाहिए ।[१]

अर्वाचीन पत्र-लेखन पद्धति में सम्बोधन-अभिवादन के शब्दों की विस्तृत सूची पं० देवनारायण द्विवेदी ने अपने 'पत्र-कला' शीर्षक लेख में दी है ।[२]

प्राचीन पद्धति के अनुसार सम्बोधन-अभिवादन की दृष्टि से पत्रों के तीन प्रकार बताये गये हैं:- (१)छोटे की ओर से बड़ों को, [illegible]-

---

१ 'पत्रकौमुदी', संपा० श्रीमन्नारायण द्विवेदी, पृ० २१-२२ ।

२ 'मनोहरपत्र', संपा० सूर्यबली सिंह, पृ० ४७-४९ ।

(२) बड़ों की ओर से छोटों को और (३) बराबर वालों को । नातेदारी में छुटाई-बड़ाई और बराबरी, अवस्था पर निर्भर नहीं है, किन्तु सम्बन्ध पर है ।

प्राचीन पत्र-पद्धति में सम्बोधन-अभिवादन की विधि में लम्बी-लम्बी प्रशस्तियां दी जाती थी । और किसने, कहांसे, किसको पत्र लिखा है आदि सब बातों का पत्र के प्रारम्भ में उल्लेख किया जाता था । जैसे, जोधपुर के महाराजा अभैसिंघ की ओर से जयपुर- नरेश सवाई जयसिंह को लिखे गये पत्र का प्रारम्भ देखिए -

"स्वस्ति श्री राजराजेन्द्र महाराजाधिराज महाराजा श्री सवाई जैसिंघ जी आरोग्य जोधपुर महादुरंगे थां राजराजेश्वर महाराजाधिराज महाराजा श्री अभैसिंघ जी लिखावंत जुहार अवधार जो जी ।"[१]

प्राचीन पत्रों में सम्बोधन-अभिवादन में लम्बी-लम्बी प्रशस्तियां देने का एक कारण तो यह था कि उन दिनों राजकीय पत्र कुशल लेखकों द्वारा लिखे जाते थे । वे लेखक संस्कृत की परम्परागत पद्धति के अनुसार पत्र तैयार करते थे ।

राजस्थानी में लिखे गये प्राचीन पत्रों में सामान्यतया अभिवादन के लिए "जुहार अवधारजोजी", "मुजरो अवधारजो"[२] आदि शब्द प्रयुक्त किये जाते थे । मराठा शासकों तथा सरदारों द्वारा लिखे गये पत्रों में "आसिर्वाद वाचन्यै",[३] "प्रणाम बंचणा",[४] रामराय वाच्यै"[५] आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है । पेशवा ब्राह्मण कुल के थे अत: उनके द्वारा भेजे गये पत्रों में सर्वत्र प्राप्तिकर्त्ता को आशीर्वाद सूचक शब्दों का प्रयोग किया गया है ।

भारतेन्दु-युग के पत्रों में सम्बोधन-अभिवादन की विधि में अपेक्षाकृत सरलता और अनौपचारिकता मिलती है । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पत्रों में ~~अपरिचित~~ पत्र-प्राप्तिकर्त्ता व्यक्ति के ~~प्रति~~ प्रति सम्बन्ध

---

१ "परम्परा", भाग-२४, सन् १९६७, पृ० ३२ ।

२ "कतिपय राजकीय पत्र", श्रीकेसरी नारायण शुक्ल, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, हीरक जयंती-अंक, पृ० १९३-९४ ।

३ "१८वीं शती के हिन्दी पत्र" (१९७०), पृ० ३४५ ।

४ " -वही-, पृ० ३४६ । ५- -वही-, पृ० ३४८ ।

के अनुरूप सम्बोधन-अभिवादन की पद्धति का प्रयोग हुआ है । "प्रेमघन" जी से उनका सम्बन्ध विशेष आत्मीयता पूर्ण था, इसलिए उनको लिखे गये पत्रों में "मेरे प्यारे दोस्त", "प्रिय मित्रवर" आदि सम्बोधनों का प्रयोग किया है ।[1] किन्तु पं० राधाचरण गोस्वामी के प्रति उनके मन में पूज्यभाव था, अतएव गोस्वामी जी को प्रेषित पत्रों में "अनेक कोटि सष्टांग दण्डवत् प्रणामंतर निवेदयति", "शतश: प्रणति के पश्चात् निवेदन" आदि विशुद्ध संस्कृत पत्र-लेखन पद्धति के अनुसार सम्बोधन-अभिवादन की विधि अपनाई गयी है ।[2] पं० प्रतापनारायण मिश्र के पत्रों में सम्बोधन के शब्द संक्षिप्त होते थे । वे अपने साहित्यिक मित्रों को प्राय: "प्रिय" और "प्रियवर" से ही सम्बोधित करते थे । पं० श्रीधर पाठक, बाबू राधाकृष्णदास आदि को लिखे गये उनके पत्रों में इन्हीं सम्बोधनों का प्रयोग मिलता है ।[3] इस प्रकार भारतेन्दु-युग के पत्रों में सम्बोधन-अभिवादन की विधि प्राचीन-मध्यकाल के पत्रों से कहीं अधिक सरल और संक्षिप्त है ।

द्विवेदी-युग के कुछ आचार्यों के पत्रों में दीर्घ प्रशस्तियों का प्रयोग किया है । उदाहरणस्वरूप पं० पद्मसिंह शर्मा द्वारा आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी को लिखे गये प्रारम्भिक कालीन पत्रों को देखा जा सकता है ।[4] इसी प्रकार पं० गिरधर शर्मा चतुर्वेदी के पत्रों के सम्बोधन भी तत्सम-पदावली से युक्त हैं । जैसे- "श्रीमत्सु प्रियवरेष्टु विद्वत्प्रवरेष्टु महानुभावेष्टु सप्रणति ।"[5] यह सम्बोधन पं० पद्मसिंह को किया गया था ।

---

१ "प्रेमघन और उनका कृतित्व" (१९७६), डा० रामचन्द्र पुरोहित, परिशिष्ट-२

२ भारतेन्दु-ग्रंथावली भाग-३" (सं० २०१०), पृ० ६६९, ९७२ ।

३ "प्रतापनारायण मिश्र की हिन्दी गद्य को देन" (१९७०), डा० शांति प्रकाश-वर्मा, पृ० ४७८-७९ ।

४ (क) श्रीमत्सु अलौकिक प्रतिभासम्पन्न कवि कुंजरेष्टु सांजलिबन्धे प्रणति-कदम्बा: ।"
- "द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र", पृ० ७८ ।

(ख) श्रीमत्सु कविता कामिनीगृहीतथयकुशेशयेष्टु धन्यजनु: प्रणतिततय: सन्तुतराम् ।"
- वही-, पृ० ७९ ।

५ "स्वर्गीय पद्मसिंह शर्मा का पत्र-संग्रह", भारतीय साहित्य, वर्ष-१३, अंक ३-४, पृ० १६९ ।

पं० श्रीधर पाठक, बाबू बालमुकुन्द गुप्त आदि के पत्रों में लम्बी-लम्बी प्रशस्तियां नहीं मिलती । पाठक जी जब आचार्य द्विवेदी को पत्र लिखते थे, तो "श्रद्धेय मित्र", "प्रिय सखे" आदिक संक्षिप्त सम्बोधनों का ही प्रयोग करते थे ।[1] इसी प्रकार बाबू बालमुकुन्द गुप्त द्वारा पं० श्रीधर पाठक को लिखे गये पत्रों में "श्रीयुत", "श्रीयुत पंडित जी महाराज" आदि सम्बोधनों का प्रयोग किया गया है ।[2]

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी प्रणाम करने वालों को आशीर्वाद न देकर पत्रों में "नमोनम:" लिखते थे ।[3] जिससे वे बहुत प्रसन्न होते थे या आत्मीय मानते थे, उसे आयु में छोटा होने पर आशीर्ष देते थे । पं० ~~[illegible]~~ नन्ददुलारे वाजपेयी ने निराला जी को १ अगस्त १९२९ के पत्र में लिखा था :- "द्विवेदी जी का एक पत्र आया था, वे छन्द शास्त्र तथा काव्यानुशासन (कविता के कानून) पर खोज करने की सलाह देते हैं । मुझसे अब शायद कुछ प्रसन्न है - इस पत्र में आशीर्वचन लिखा है पहले नमोनम: लिखते थे ।"[4] इस प्रकार पत्रों के सम्बोधनों से प्रेषक और अप्रेषक के सम्बन्धों को सहज ही पता चल जाता है ।

छायावादी कवियों के पत्रों में सम्बोधन-वैविध्य की दृष्टि से निराला जी के पत्र विशेष उल्लेखनीय हैं । उनके पत्रों में प्राचीन और नवीन दोनों पत्र-पद्धतियों के अनेक सुन्दर उदाहरण मिलते हैं । अपनी सास को प्रेषित २२-२-१९२८ के पत्र में उन्होंने लिखा है-"श्री अम्मा, चरण स्पर्श ।"[5] यहां पुरानी पत्र-पद्धति को जैसे नया रूप दे दिया है । आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी को उन्होंने प्रारम्भ में जो दो-तीन पत्र लिखे हैं, उनमें प्राचीन सम्बोधन-अभिवादन की प्रणाली स्पष्टरूप से झलकती है । आचार्य द्विवेदी जी के नाम लिखे २६-८-१९२० के पत्र का सम्बोधन देखिए-

---

१ "द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र" (१९५८), पृ० १९६-९७ ।

२ -वही-, पृ० २०४-२०५ ।

३ "द्विवेदी-पत्रावली" (१९५४), पृ० १९६-१७८ ।

४ "नन्ददुलारे वाजपेयी के पत्र-निराला के नाम", भारतीय साहित्य, वर्ष-१४, अंक ३-४, पृ० १९४ ।

५ "निराला की साहित्य-साधना -३" (१९७६), पृ० २४२ ।

"परम पूजनीय
श्री १०८ महावीर प्रसाद जी
द्विवेदी महाराज ,
श्री चरणों मे (में)"[१]

निराला जी जयशंकर प्रसाद को पत्रों में "प्रिय बाबू साहब" अथवा "श्रीमान् बाबू साहब" लिखकर संबोधित करते थे ।[२]

प्रसंगानुकूल सम्बोधनों का सबसे रोचक एवं सुन्दर प्रयोग सुमित्रानन्दन पंत ने बच्चन जी को लिखे पत्रों में किया है । इस सम्बन्ध में बच्चन जी की बीटनिक प्रवृत्ति को लेकर लिखे गये पत्रों के कुछ उदाहरण यहां हम प्रस्तुत करते हैं :-

(i) प्रिय बीटनिक बच्चन ,
क्या सुन्दर अनुप्रास तुम्हारे नाम से मिलता है ।[३]

(ii) "प्रिय फैलो बीटनिक",[४]

(iii) "प्रिय बीटनिक-गुरु
फ्रैंक कवि ।
पांचवें सवार
बच्चन,
नमस्कार ।"[५]

सम्बोधन-अभिवादन की सुन्दर और संक्षिप्त विधि के अनेक उदाहरण "उग्र" जी द्वारा सम्पादित "फाइल और प्रोफाइल" के पत्रों में भी मिलते हैं । इसमें रामवृक्ष बेनीपुरी द्वारा "उग्र" जी के नाम लिखे गये पत्रों के सम्बोधन-अभिवादन अत्यन्त सुन्दर बन पड़े हैं । कुछ उदाहरण देखिए -

---

१ "निराला की साहित्य-साधना भाग-३" (१९७६), पृ० २१५ ।
२ -वही-, पृ० २६६ ।
३ "पंत के दो सौ पत्र : बच्चन के नाम" (१९७१), पृ० १९१ ।
४ -वही-, पृ० १९३ ।
५ -वही-, पृ० २२७ ।

(i) "भाई उग्र जी ,

राम-राम ।"[1]

(ii) "भाई उग्र ,

मस्त रहो-भंग छींटो-डंड पेलो ।"[2]

(iii) "भाई उग्र -

(ओह कितना भयानक तुम्हारा नाम है ।)"[3]

हिन्दी के साहित्यकारों ने पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादकों के नाम भी पत्र लिख भेजे हैं । "चांद" में "अजी सम्पादक जी महाराज, जयराम जी की" के सम्बोधन-अभिवादन से प्रकाशित दुबे जी की चिट्ठियां" बहुत प्रसिद्ध हैं । किन्तु "सम्पादक जी" सम्बोधन के साथ अभिवादन का अभिनय प्रयोग हमें पं० विद्यानिवास मिश्र द्वारा "सरस्वती" और "कल्पना" के सम्पादकों के पास भेजे गये पत्रों में मिलता है । "भ्रमरानन्द के पत्र" शीर्षक से प्रकाशित ये पत्र अब मिश्र जी के विभिन्न निबन्ध-संग्रहों में संकलित हैं । इन पत्रों की विशेषता यह है कि इनमें अभिवादन के रूप में प्रयुक्त शब्द से पत्र का विषय अपने आप प्रकट हो जाता है । जैसे, फागुन की रंगीनी का वर्णन पत्र में करना है तो सम्बोधन-अभिवादन की विधि होगी- "सम्पादक जी,

जय फागुन ।"[4] इसी प्रकार यदि युद्ध की स्थिति का पत्र में विवरण देना है तो सम्बोधन-अभिवादन की पद्धति इस प्रकार होगी - "सम्पादक जी",

जय जुद्ध जुद्ध जुद्ध ।"[5]

इस प्रकार सम्बोधन-अभिवादन की विशिष्ट विधि के कारण ये पत्र सम्पादक के नाम लिखे गये पत्रों की परम्परा में, अपना पृथक् महत्व रखते हैं । "कल्पना" के सम्पादक के नाम लिखे हरिशंकर परसाई के पत्र भी पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुके हैं, किन्तु उनमें सम्बोधन-अभिवादन की पद्धति में वैविध्य नहीं है ।

---

१ "फाइल और प्रोफाइल" (१९७०), पृ० ३१७ ।

२ -वही-, पृ० ३१७ । ३ -वही-, पृ० ३१९ ।

४ "आंगन का पंछी और बनजारा मन" (१९६२), पृ० ९१ ।

५ "मैंने सिल पहुंचाई" (१९६६), पृ० ९ ।

सम्बोधन-अभिवादन के विविध प्रयोगों से यह स्पष्ट होता है कि युग-प्रति-युग इसकी पद्धति में नये-नये प्रयोग होते रहे हैं । स्थानाभाव और विस्तार भय से हमने कुछ उल्लेखनीय पत्र-लेखकों के ही उदाहरण प्रस्तुत किये हैं, किन्तु हिन्दी में बहुत-से पत्रों में नित्य नूतन सम्बोधनों का प्रयोग किया गया है । सम्बोधनों में सर्वाधिक विविधता और आत्मीयता की झलक हमें प्रेम-पत्रों में मिलती है । इस प्रकार के पत्रों में प्राय: नमस्कार" "सप्रेम वन्दे" आदि अभिवादन के शब्द प्रयुक्त नहीं किये जाते । प्रेम-पत्रों में प्रयुक्त होने वाले विभिन्न सम्बोधनों के सम्बन्ध में पं० कृष्णकान्त मालवीय का निम्नांकित मत विचारणीय है -

"प्रेम-पत्रों में "मेरी रानी", मेरे हृदय की रानी", मेरे जीवन की सहचरी", "प्राणेश्वरी", स्नेहमयी", "श्रीमतीजी", "प्यारे", प्राणेश्वर", "देवता" आदि सम्बोधन ठीक नहीं हैं । सबसे अच्छा सम्बोधन वह है, जिससे हम उसे रोज़ पुकारते हों, जिसकी सहायता से दुनिया के सामने हम उससे बातें करते हों, जो हर समय जबान पर रहता है और जो हमारी जबान पर और उसके कानों पर रमा हुआ हो ।"[१]

उर्दू की नयी पीढ़ीके सशक्त प्रतिनिधि कवि तथा हिन्दी के प्रसिद्ध कथाकार राही मासूम रज़ा के एक पत्र का शीर्षक सम्बोधन के रूप में ही है -" प्यारे लिखूं या प्रिय ?"[२] इसी प्रकार अमृता प्रीतम के एक पत्र पर शीर्षक दिया गया है -"मेरे महबूब ! तसव्वुर !"[३] अमृता जी के इमरोज़ के नाम लिखे हुए पत्र सम्बोधन-वैविध्य की दृष्टि से विशेष उल्लेख्य हैं । इन पत्रों में परम्परा से अलग हटकर "मेरे विश्वास", "[४] -

---

१" मनोहर पत्र"(१९५६), भूमिका, (ट)

२" ज्ञानोदय" पत्र- विशेषांक, नवम्बर १९६३, पृ० ११३ ।

३ -वही-, पृ० ७१ ।

४"दस्तावेज़"(१९७८), संपा० इमरोज़, पृ० १३ ।

"मेरे गीतों की जान !"[1] "मेरी तकदीर"[2] "मेरे अच्छे जीती !"[3] "मेरे मजहब ! ! मेरे ईमान !"[4] आदि सम्बोधनों का प्रयोग हुआ है । उनके एक पत्र का प्रारम्भ इस प्रकार है :-

"मेरे महबूब ! मेरे तसव्वुर !

मेरी सारी ज़िन्दगी मुझे ऐसी लगती है जैसे मैंने तुम्हें एक ख़त लिखा हो । मेरे दिल की हर धड़कन एक अक्षर है, मेरी हर सांस जैसे कोई मात्रा, हर दिन जैसे कोई वाक्य, और सारी ज़िन्दगी जैसे एक ख़त ।"[5]

इससे स्पष्ट होता है कि प्रेम-पत्रों में सम्बोधनों की जो विविधता, आत्मीयता, ताज़गी एवं स्फूर्ति मिलती है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

(३) परिचय और हस्ताक्षर की प्रणाली में वैविध्य :

पत्र के सम्बोधन और अभिवादन के साथ परिचय और हस्ताक्षर अंग का घनिष्ठ सम्बन्ध है । एक से पत्र प्रारम्भ होता है, दूसरे से समाप्ति । अंग्रेजी में पत्र के इस अंग को "Complementary close and Signature" कहते हैं ।

प्राचीन पत्र-लेखन पद्धति में पत्र-प्रेषक अपना परिचय उपाधि-सहित प्रारम्भ में ही दे देता था । पत्र के अंत में "किमधिकं" "किं बहुना" जैसे शब्द कभी-कभी प्रयुक्त होते थे ।[6] नवीन पद्धति में सामान्यत: हिन्दी पत्रों में प्रेषक के हस्ताक्षर से पहले "भवदीय", "आपका", "विनीत", "स्नेहाधीन" आदि शब्द प्रयुक्त होते हैं । परन्तु हिन्दी साहित्यकों के पत्रों में परिचय और हस्ताक्षर की प्रणाली में भी पर्याप्त नवीनता दृष्टिगत होती है । "फाइल और प्रोफाइल" में "उग्र" जी के नाम लिखे गये विभिन्न साहित्यकों के पत्र इस दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण हैं । कुछ अनूठे उदाहरण यहां हम प्रस्तुत करते हैं :-

---

१ "स दस्तावेज़" (१९७८), संपा० इमरोज़ , पृ० १३ ।

२ -वही-, पृ० १७ । ३-वही-, पृ० १८ । ४-वही-, पृ० ६१ ।

५ "ज्ञानोदय", पत्र-विशेषांक, नवम्बर १९६३, पृ० ७१ ।

६ "देखिए: फोर्ट विलियम कालेज कप्तान श्री मार्सल साहब को लिखा पं० योगध्यान मिश्र का पत्र । "आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका" पृ० ३६४ ।

(i) "छोटा आदमी ,
माखनलाल चतुर्वेदी "[1]

(ii) "तुम्हारा अभिन्न चिर प्रसन्न और खिन्न, शिवपूजन "[2]

(iii) "ऊँची दूकान पर फीकी मिठाई बेचनेवाले उग्र के प्रेम-पाश में बुरी तरह जकड़ा हुआ
श्री प्रफुल्लचन्द्र ओझा "[3]

इस प्रकार प्रत्येक पत्र-लेखक अपना परिचय सम्बोध्य व्यक्ति के सम्मुख उसके तथा अपने व्यक्तित्व के अनुरूप देने का प्रयास करता है ।

कविवर पंत ने बच्चन जी के नाम लिखे पत्रों में जहां प्रसंगानुकूल सम्बोधन विधि का प्रयोग किया है, वहां तदनुरूप अपना परिचय भी दिया है । यथा -

(i) "साइंदा
तुम्हारा बीटनिक डिसाइपल "[4]

(ii) "बहुत प्यार - बीटनिक प्यार
तुम्हारा शिष्य
साइंदा "[5]

इससे प्रकट होता है सम्बोधन विधि के अनुरूप परिचय-पद्धति का प्रयोग पत्र में अनूठा आकर्षण उत्पन्न कर देता है ।

परिचय-हस्ताक्षर के वैविध्य से पत्र-लेखक तथा भावग्राहक की मन: स्थिति का संकेत भी मिलता है । इस दृष्टि से राय कृष्णदास जी द्वारा लिखित जयशंकर प्रसाद के नाम पत्रों की अभिनिवेदन-प्रणाली विशेष रूप से उल्लेखनीय है । कुछ उदाहरण यहां हम प्रस्तुत करते हैं :-

---

१ "फाइल और प्रोफाइल " (१९७०), पृ० २८७ ।
२ -वही-, पृ० ३५९ ।
३ -वही-, पृ० २०३ ।
४ "बच्चन के नाम पन्त के दो सौ पत्र" (१९७१), पृ० १९२ ।
५ -वही-, पृ० १९३ ।

(i) "अभिन्न
कृष्णदास"[1]

(ii) "संतप्त - हृदय
कृष्णदास"[2]

(iii) "कभी भवदीय, अब विस्मृत
कृष्णदास"[3]

(iv) "समदु:खित
कृष्णदास"[4]

इस प्रकार पत्र-साहित्य में लेखन-पद्धति के वैविध्य की चर्चा में परिचय-हस्ताक्षर अथवा अभिनिवेदन की प्रणाली में प्राप्त वैविध्य का भी अपना विशेष महत्व है ।

(४) "पुनश्च" में उद्घाटित तथ्यों में वैविध्य :

"पुनश्च" का सम्बन्ध पत्र के अंत से है । सामान्यत: पत्र में हस्ताक्षर के बाद कुछ नहीं लिखा जाता, किन्तु यदि कोई बात लिखने से छूट गयी हो और पत्र समाप्ति के बाद याद आये तो नीचे नवीन पंक्ति में "पुनश्च" लिखकर लिपिबद्ध की जाती है । अंग्रेजी में इसे "पोस्ट स्क्रीप्ट" कहते हैं । हिन्दी के अनेक पत्र-लेखकों ने "पुनश्च" के अन्तर्गत कलात्मक रीति से महत्वपूर्ण तथ्यों का उद्घाटन किया है ।

प्राचीन पत्र-लेखन पद्धति में "पुनश्च" का उल्लेख नहीं मिलता, यद्यपि हस्ताक्षर के बाद पत्रों में कई सूचनाएं दी गई हैं । पत्रों में "पुनश्च" लिखने की परिपाटी पाश्चात्य जगत् के सम्पर्क में आने के बाद ही चल ~~रही है~~ पड़ी है ।

भारतेन्दु-युग के पत्र-लेखकों ने अपने पत्रों में हस्ताक्षर के बाद नीचे नवीन पंक्ति में छूटी हुई बात या महत्वपूर्ण तथ्य की सूचना तो दी

---

१ "प्रसाद के नाम पत्र" (१९७६), पृ० १८ ।
२ " -वही-, पृ० १९ ।
३ " -वही-, पृ० २० ।
४ -वही-, पृ० २१ ।

है, परन्तु "पुनश्च" शब्द का प्रयोग नहीं किया है । स्वामी दयानन्द सरस्वती के कई पत्रों में हस्ताक्षर के बाद नीचे नवीन पंक्ति में महत्वपूर्ण तथ्यों की जानकारी दी गयी है । उदाहरण के लिए संवत् १९३२ श्रावण सुदि ८ को अम अहमदाबाद के न्यायाधीश पं० गोपालराव हरि देशमुख के नाम लिखे गये पत्र की ये पंक्तियां देखी जा सकती है-

"यहां के पंडित लोग सामने तो कोई भी नहीं आये, किन्तु दूर से बड़-बड़ किया करते हैं सो जानना ।"[१]

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पत्रों में भी प्राय: "पुनश्च" के उल्लेख के बिना हस्ताक्षर के बाद नीचे नवीन पंक्ति में विशेष सूचना लिख दी गयी है । पं० राधाचरण गोस्वामी के नाम लिखे एक पत्र में समाप्ति के बाद मूसलधार वर्षा के समाचार उन्होंने इस प्रकार लिख दिया है -

"आज सबेरे यहां घनघोर वृष्टि हो रही है ।"[२]

द्विवेदी-युग के पत्र-लेखकों ने अपने पत्रों में कहीं "पुनश्च" शब्द का प्रयोग किया है तो कहीं बिना इस शब्द-प्रयोग के ही छूटी हुई बात लिख दी है । बाबू बालमुकुन्द गुप्त द्वारा पं० श्रीधर पाठक के नाम प्रेषित १७-१-१८८१ के पत्र की समाप्ति के बाद निम्नलिखित वाक्य मिलता है -

"आपने जो नया पता लिखा था वह खो गया फिर लिखिए"[३]

इस पत्र में "पुनश्च" शब्द का प्रयोग नहीं है ।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के बहुत-से पत्रों में "पुनश्च" शब्द का स्पष्ट उल्लेख हुआ है और उन्होंने "पुनश्च" के अन्तर्गत कहीं सामान्य सूचना[३] तो कहीं विशेष सूचना[४] लिखकर पत्र भेज दिया है ।

---

१ "कृष्ण दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन" (१९५५), पृ० २७

२ "भारतेन्दु-ग्रंथावली भाग-३" (सं० २०१० वि०), पृ० ९७१ ।

३ "द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र" (१९५८), पृ० २०७ ।

सामान्य सूचना[1] तो कहीं विशेष सूचना[2] लिखकर पत्र भेज दिया है ।

महाकवि निराला ने आचार्य द्विवेदी के नाम लिखे ११-१-१९२१ के पत्र में हस्ताक्षर के बाद "पुनश्च" लिखे बिना (हिन्दी सिखाइए) इति ।।"[3] यह छोटा-सा वाक्य जोड़ दिया है ।

पं० बनारसीदास चतुर्वेदी को प्रेषित एक पत्र में मुंशी प्रेमचन्द ने "पुनश्च" में चतुर्वेदी को पुनर्विवाह के लिए प्रेरित करते हुए एक महत्वपूर्ण तथ्य का उद्घाटन कर दिया है ।[4]

पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने भी अपने कई पत्रों में "पुनश्च" के अन्तर्गत बहुत महत्वपूर्ण तथ्यों को अनूठे ढंग से व्यक्त कर दिया है । डा० प्रभाकर माचवे को लिखे १०-१-१९७१ के पत्र में उन्होंने पत्र के दीर्घाकार हो जाने की बात को प्रसिद्ध आंग्ल पत्र-लेखक पेनी के कथन द्वारा बड़े

१" माफ कीजिए हमने इस टुकड़े ही पर आपको यह पत्र लिख दिया ।"
-"द्विवेदी-पत्रावली" (१९५४), पृ० ६८ ।

२"स्वप्न के विषय में क्या लाला साहब ने कुछ लिखा है जो आपने कहा कि "लाला सीताराम का उत्तर यही है कि कुछ अच्छे तरजुमा करनेवाले पैदा हों और अच्छा अनुवाद कर" शायद उनकी तरफ से आपने उत्तर दिया है ।"
-"बालमुकुन्द गुप्त - स्मारक-ग्रंथ"
(१९५०), पृ० १२६ ।

३" निराला की साहित्य-साधना" भाग- ३ ,
(१९७६), पृ० २१६ ।

४"आप अपना घर क्यों नहीं बसाते , संन्यास ले रहे हैं जब कि आपको गृहस्थ होना चाहिए । भला हो विधवा - विवाह का, आपको अपने लिए कन्या पाने में कोई कठिनाई न होगी । संयम एक वरदान है मगर हत्या करना अभिशाप ।- -"
-"चिट्ठी-पत्री" भाग-२ (१९६२),
पृ० ८७ ।

ही लाक्षणिक ढंग से लिपिबद्ध कर दिया है ।[१]

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्रों में "पुनश्च" के अन्तर्गत जो विचार प्रकट किये गये हैं, वे उनके चिन्तनशील व्यक्तित्व के परिचायक हैं । पं० बनारसीदास चतुर्वेदी के नाम लिखे उनके पत्रों में हमें ऐसे अनेक विचारोत्तेजक "पुनश्च" की झलक मिल जाती है ।[२] ये "पुनश्च" प्राय: दीर्घाकार हैं ।

पत्रों में "पुनश्च" का सर्वाधिक प्रयोग सुमित्रानन्दन पन्त ने किया है । बच्चन जी के नाम लिखे गये पत्रों में उन्होंने अनेक स्थानों पर लघु और दीर्घ "पुनश्च" से सहायता ली है और उनमें अनेक विषयों की सूचनाएं दी हैं ।[३]

१" इतनी लम्बी चिट्ठी भेजने के बाद मुझे Pliny का यह वाक्य याद आ गया - " I have not time to write you a short letter, therefore, I have written you a long one"

-"डा० बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र" (१९७१), पृ० २५६ ।

२" द्रष्टव्य : "डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्र "(१९७४), पृ० १५२

३ (क)" नरेन्द्र को भी फ़ोन से बतला देना ।"

-" बच्चन के नाम पंत के दो सौ पत्र" (१९७१), पृ० ३१ ।

(ख)"हो सका तो सर्दी अधिक नहीं रही तो - २३ की शाम को चलकर २४ को सबेरे पहुंचने का प्रयत्न करूंगा । कलम का सिपाही भी लेता आऊंगा— तुम तो कलम बंदूक दोनों चलाते हो - सिपाही भी रहे ही हो यदि बुलो को सिपाही कहा जा सके तो -"

- वही- पृ० ५३ ।

(ग)"सुप्रेम मत लिखा करो -आइस्ड पेस्ट्री सा लगता है- प्यार भेजा करो -"

- वही-, पृ० ६८ ।

(घ)"श्री पिचो जी ने "उर्वशी" पर सम्मति मांगी है-कलतक भेज दूंगा ।"

- वही-, पृ० ८८ ।

बच्चन जी के पत्रों में भी हमें "पुनश्च" के अन्तर्गत कभ-कभी रोचक सूचना और तथ्य का पता चल जाता है । निरंकार देव सेवक के नाम भेजे गये ७-६-१९५१ के पत्र में उन्होंने हस्ताक्षर के बाद अपने अध्ययन -कक्ष की जानकारी, दार्शनिक ढंग से, इन शब्दों में दी है :

"मैंने अपने अध्ययन कक्ष का नाम "दशद्वार" रखा है । तुम उसमें ठहरे थे । इसमें दस Openings हैं - कबीर का दोहा याद है ? - "दस द्वारे का पींजरा तामें पंछी पौन । रहबे को आचरज है, जाय तो अचरज कौन ।"[१]

इस प्रकार हिन्दी के प्रमुख पत्र-लेखकों के पत्रों में "पुनश्च" के अन्तर्गत अनेक महत्वपूर्ण तथ्यों का संकेत प्राप्त होता है । अतएव पत्र-लेखन पद्धति सम्बन्धी विशेषताओं की चर्चा में "पुनश्च" के अन्तर्गत उद्घाटित विविध तथ्यों पर भी किंचित् प्रकाश डाला गया है ।

पत्र के रचना-तंत्र की दृष्टि से हमने उसके जिन चार अंगों- (१) शीर्षक या सिरनामा, (२) प्रारम्भ , (३) विषय-वस्तु और (४) अंत - का पीछे विश्लेषण किया था, इन में विषय-वस्तु को छोड़कर शेष तीनों अंगों की लेखन-पद्धति के वैविध्य का यहां विस्तार से विवेचन किया है । अब हम विषय की दृष्टि से पत्रों को औपचारिक और अनौपचारिक- इन दो विभागों में बांटकर आगे औपचारिक पत्रों की लेखन-पद्धति की चर्चा करेंगे । अनौपचारिक पत्रों में सम्बोधन, अभिवादन आदि का विधि-विधान तो रहता है, किन्तु उसके विषय प्रतिपादन के सम्बन्ध में कोई निश्चित सिद्धांत नहीं है । अत: कुछ अनौपचारिक पत्रों की लेखन-पद्धति में प्राप्त वैविध्य का परिचय दिया गया है ।

(५) औपचारिक पत्रों की लेखन-पद्धति में वैविध्य :

पत्रों के सामान्यत: दो प्रकार माने गये हैं :- एक औपचारिक पत्र और दूसरे अनौपचारिक पत्र । व्यावहारिक और सार्वजनिक विषयों पर लिखे गये पत्र औपचारिक कहलाते हैं तथा वैयक्तिक एवं -

---

१ "बच्चन के पत्र" (१९७२), पृ० २६ ।

पारिवारिक मामलों पर लिखे गये पत्र अनौपचारिक कहलाते हैं । साहित्य में जिन पत्रों को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है, वे प्राय: वैयक्तिक पत्र ही हैं । हिन्दी पत्र-साहित्य में कुछ ऐसे पत्र भी उपलब्ध होते हैं जो सामान्यत: अनौपचारिक पत्र समझे जाते हैं । निमंत्रण पत्र, सहानुभूति पत्र, बधाई पत्र आदि ऐसे ही पत्र हैं । उनके लिखने, तैयार करने और भेजने के कुछ प्रकार रूढ़ हो गए हैं । परंतु साहित्यिकों द्वारा लिखे जाने पर इन पत्रों की पद्धति में पर्याप्त वैविध्य आ गया है । एक ही विषय पर दो विभिन्न साहित्यिकों द्वारा भेजे गये निमन्त्रण-पत्रों की पद्धति में कुछ अंतर स्पष्ट रूप से दिखाई पडता है । महान् कलाकार की लेखनी के स्पर्श से रूढ़पत्र-प्रकारों में कितनी विविधता और नवीनता आ गयी है, इसका परिचय यहां निमंत्रण-पत्र, सहानुभूति-पत्र और बधाई पत्रों के कुछ नमूनों को देखने से मिलता है ।

(i) निमन्त्रण - पत्र :

हम जीवन में अनेक अवसरों पर अपने इष्ट-मित्रों, परिचितों, परिजनों आदि को निमन्त्रण-पत्र लिखते हैं । ये पत्र औपचारिक शैली में भी लिखे जाते हैं और अनौपचारिक शैली में भी । साहित्यिक, राजनैतिक, धार्मिक आदि विविध क्षेत्र के प्रसिद्ध व्यक्ति भी अपने इष्ट-मित्रों, स्वजन-परिजनों आदि को निमंत्रण-पत्र लिखते हैं । किन्तु इन निमंत्रण पत्रों की शैली सामान्य व्यक्तियों के निमंत्रण-पत्रों से भिन्न होती है । यही नहीं, दो साहित्यिकों के निमंत्रण-पत्रों की शैली में भी विभिन्नता लक्षित होती है । उदाहरण के लिए यहां हम एक साहित्यकार (जयशंकर प्रसाद) के नाम लिखित दो साहित्यकारों (राय कृष्णदास तथा सुमित्रानन्दन पन्त) के निमंत्रण-पत्रों के कुछ अंश उद्धृत करते हैं :-

राय साहब प्रसाद जी को अपने यहां पधारने का निमन्त्रण देते हुए लिखते हैं :

'प्रिय -

आइए । अवश्य आइए ।

अनुग्रहपूर्वक आइए । कृपा पूर्वक आइए । दयापूर्वक आइए । प्रेम पूर्वक आइए ।

स्नेह पूर्वक आइए । प्रसन्नतापूर्वक आइए । मानवपूर्वक आइए । अभिमान-पूर्वक आइए । भावपूर्वक आइए । भंगीपूर्वक आइए । अदा से आइए । नखरे से आइए । नाज से आइए । अन्दाज से आइए । साज से आइए । आइए - - - आइए - - - -

दादाजी के आग्रह से आइए । केशव जी के आग्रह से आइए । देसाई जी के आग्रह से आइए । सेठ जी के आग्रह से आइए । सबर बाबू के आग्रह से आइए और - - - इस जन के आग्रह से आइए ।"[1]

पन्त जी प्रसाद जी को हिन्दुस्तानी एकेडेमी की लिटररी कान्फरेंस में पधारने का निमन्त्रण देते हुए लिखते हैं :

"हिन्दुस्तानी एकेडेमी से आपको निमन्त्रण पत्र भेजा गया है, मेरा अपना भी आग्रहपूर्ण विनीत अनुरोध है कि आप उस अवसर यहां - प्रयाग - आकर सम्मेलन की शोभा एवं मेरे हृदय का आनन्द बढ़ाइए- मेरे मित्र मिस्टर टंडन की प्रार्थना है कि आप यहां हमारे ही साथ ठहरें । हम दोनों विशेष अनुग्रहीत होंगे -

आपकी सहृदयता तथा सौजन्य पर मेरा अत्यधिक विश्वास है मुझे पूर्ण आशा है कि आप मेरी विनीत प्रार्थना स्वीकार कर मुझे चिर कृतज्ञता एवं स्नेह के पाश में समेट कर बांध लेंगे । श्री शान्तिप्रिय द्विवेदीजी से सुन चुका हूं कि आप काशी से बाहर बहुत कम जाते हैं पर फिर भी न जाने क्यों, मेरा विश्वास है कि आप अवश्य ही हिन्दुस्तानी एकेडेमी के सम्मेलन के अवसर पर यहां आने की कृपा करेंगे -

विशेष कृपा -"[1]

ये दोनों निमन्त्रण पत्र हैं और दोनों एक ही व्यक्ति के पास भेजे गये हैं, किन्तु दो अलग अलग व्यक्तियों द्वारा लिखे जाने के कारण दोनों की शैली में कुछ अन्तर आ गया है । आग्रह और अनुरोध का भाव दोनों में हैं, किन्तु प्रथम पत्र के आग्रह-अनुरोध में अपेक्षाकृत अधिक तीव्रता दिखाई पड़ती है ।

---

१ "प्रसाद के नाम पत्र" (१९७६), पृ० २२-२३ ।

२ "प्रसाद के नाम पत्र" (१९७६), पृ० १८६ ।

इसी प्रकार एक ही विषय पर विभिन्न व्यक्तियों द्वारा लिखे गये निमन्त्रण पत्रों की शैली भी वैविध्यपूर्ण होती है । पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादक विभिन्न साहित्यकारों को रचनाएं भेजने के लिए निमन्त्रण पत्र यदा-तदा लिखते रहते हैं । पत्रिका के प्रथमांक अथवा प्रवेशांक के लिए विशेष रूप से निमन्त्रण पत्र भेजने पड़ते हैं । कुछ सम्पादक ऐसे निमन्त्रण-पत्र छपवाकर रख लेते हैं । जैसे "माधुरी" के सम्पादक कृष्णबिहारी मिश्र ने साहित्यकों को रचनाएं भेजने के लिए "माधुरी" कार्यालय के मुद्रित पत्र पर यह दोहरा छपाकर रखा था ।

" करहु कृपा समरथ बड़े उचित भाव नहिं अन्य ।
कविता दै अपनाइए होहि माधुरी धन्य ।।"[१]

सन् १८८५ ई० में लाला सीताराम ने "भारतोदय" नामक एक दैनिक निकाला था । २१ अप्रैल, १८८५ को श्री राधाकृष्णदास के नाम प्रेषित पत्र में "भारतोदय" को रचनात्मकसहयोग देने का निमन्त्रण भेजते हुए उन्होंने लिखा था :-

प्रिय मित्र ,

कुछ देखा सुना ? "भारतोदय" का जन्म जन्माष्टमी को है । यह नित्यमेव प्रकाश करेगा ; केवल रविवार को नहीं । लो बस, लेखनी सुधारो, कागज उगाओ । लेखों की मारामारी से, नागरी की इस क्यारी में तुम भी न्यारी ही कर लो । यह चारों यारों राधाकृष्ण, चरण, प्रताप, राय - की चार यारी है । अपने मन के गट्ठे खोलो । लिखो, कहां तक लिखोगे । प्रिय, यदि आज्ञा हो तो निःसहाय हिन्दू को ही, प्रथम "भारतोदय" में प्रकाशित कर डालें ।"[२]

---

१ (क) "निराला की साहित्य-साधना"-३ (१९७६) पृ० ८३ ।

(ख) यही दोहा "प्रसाद के नाम पत्र" में (पृ० ३३ पर) कुछ पाठ-फेर से इस प्रकार है -
" करिये कृपा समरथ सदा उचित बात नहीं अन्य ,
रचना दे अपनाइए होय " माधुरी" धन्य ।"

२ "पत्रकार प्रेमचन्द और हंस (१९७७), पृ० ७८ से उद्धृत ।

यह भी एक प्रकार का निमन्त्रण पत्र ही है, परन्तु इसकी शैली में अनौपचारिकता एवं आत्मीयता का पुट कुछ अधिक मिलता है ।

इन उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि निमन्त्र-पत्र, पत्र का एक रूढ़ प्रकार होते हुए भी विशिष्ट लेखकों की लेखनी से इसकी शैली में पर्याप्त विविधता आ गयी है ।

(II) सहानुभूति-पत्र :

प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में अनेक अवसर आते हैं जब वह निराश होकर अपने मित्रों, साथियों, स्वजनों की सहानुभूति का आश्रय पाना-चाहता है । तब मित्रों और सगों का परम कर्तव्य हो जाता है कि वे उसकी निराश घड़ियों में सान्त्वना प्रदान करने उद्देश्य से पत्र लिखें । किसी कार्य में असफलता, बीमारी, मृत्यु आदि करुण अवसरों पर ये पत्र लिखे जाते हैं ।[1] यद्यपि इन पत्रों में सम्वेदना-भाव ही मुख्यत: प्रकट किया जाता है, किन्तु विशिष्ट पत्र लेखकों के पत्रों में इसके प्रगटीकरण की पद्धति में विविधता आ गयी है । कुछ उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो जायेगी ।

महाकवि निराला जी कुतपुर पहुंचकर मियादी बुखार के चुंगल में फंस गये थे । इस बीमारी ने उन्हें बहुत परेशान किया । मुंशी प्रेमचन्द जी को जब इस बीमारी के समाचार मिले तो उन्होंने एक प्यार भरा सम्वेदना-पत्र भेजते हुए निराला जी को लिखा :

"प्रिय सूर्यकान्त जी ।

कृपापत्र मिला । मीयादी बुखार क्या इसी लिये आपकी ताक में बैठा था कि घर से निकले तो धर दबाऊं । क़िसमत ने वहां भी आपका साथ न छोड़ा । इस बीमारी ने तो आपको बिलकुल घुला डाला होगा । पहले ही ऐसे कहां के मोटे ताज़े थे । ईश्वर जल्द आपको चंगा कर दे ।"[2]

---

१ "आदर्श पत्र लेखन" (१९७४), यज्ञदत्त शर्मा, पृ० ५३ ।

२ "निराला की साहित्य-साधना" - ३ (१९७६), पृ० ११७ ।

प्रेमचन्द जी का यह सहानुभूति-पत्र सामान्य सम्वेदना पत्रों से भिन्न शैली का परिचय देता है ।

अब देखिए-बीमारी की अवस्था में सांत्वना देता हुआ "एक भारतीय आत्मा" की कलम से लिखा गया पत्र । यह पत्र उन्होंने १६-५-१९६० को श्री नर्मदा प्रसाद खरे के नाम लिखा था । पत्र लम्बा है । अतः यहां उसकी प्रारम्भिक और अंतिम पंक्तियां उद्धृत की जाती है :

प्रिय नर्मदा ,

शुभाशीष ।

तुम्हारा कार्ड पढ़कर और यह जानकर बहुत चिन्ता हुई कि तुम जबलपुर के विक्टारिया अस्पताल में हो । जाने तुम्हारी उम्र के लोगों को अपने पर बुढ़ापा ओढ़ लेने की कैसी आदत है ? मेरा विचार है कि तुम्हें चाय हो ही नहीं सकता । भला हंसता हुआ चेहरा और चुहुल की आदत कहीं बीमार होने के लिए हैं ? - - -

माना कि यह जीवन "यह ला, वह ला" का विशाल पिंजरा है, किन्तु इसे प्रार्थना का देव-मन्दिर बनाना तो पड़ेगा ही, वह चाहे रीझकर बनावें चाहे खीझकर । - - - कबीर कहा करते हैं "जहां-जहां डोलौं सोई करमा" - तुम इसकी जगह चाहे जो लिख लो, किन्तु फौरन से पेश्तर अच्छा हो जाओ ।"[१]

इस सान्त्वना-पत्र की शैली उपर्युक्त प्रेमचन्द जी के सम्वेदना-पत्र से भिन्न है यद्यपि विषय एक ही है ।

अब इष्ट-मित्रों के स्वजनों की मृत्यु का सम्वाद पाकर लिखे गये सहानुभूति पत्र के शैली-वैविध्य पर दृष्टिपात करें ।

पं० बनारसीदास चतुर्वेदी की पत्नी के निधन पर शोक-सम्वेदना प्रकट करते हुए महात्मा गांधी ने लिखा था :

"भाई बनारसीदास,

तुम्हारी धर्मपत्नी के देहान्त की खबर भाई काशीनाथ ने दी है । तुम्हारे शीर पे यह बड़ी आपत्ती आई है । मृत्यु से तो हमने

---

१ "निजीपत्रों में दादा का व्यक्तित्व", "रसवन्ती", अक्टूबर १९६८, पृ०-७०

डर को छोड़ हि दिया है । दु:ख स्वार्थ का है परन्तु इससे भी दु:ख क्यों मानें ? ऐसी घटनाएं जगत में बनती हि रहती हैं । हमारी परीक्षा का ये सब घटनाएं काल हैं । हमने परिश्रम करके जो ज्ञान पाया है वह हृदयंगम हुआ है या नहीं उसकी कसौटी ऐसे मौके पर हो सकती है । ईश्वर तुमको शांति बक्शे ।"[1]

पू० बापू द्वारा प्रकट की गई इस शोक-सम्वेदना में दार्शनिकता की झांकी मिलती है जो उनके संत-स्वभाव के अनुकूल है । इसी विषय पर जब हम डा० वासुदेवशरण अग्रवाल द्वारा व्यक्त की गयी शोक-सम्वेदना को देखते हैं, तो हमें शैली में तटस्थता के स्थान पर कुछ आत्मीयता की झलक मिलती है । श्री कृष्णानन्द गुप्त की पत्नी के स देहावसान पर उन्होंने जो पत्र गुप्त जी को लिख भेजा था, वह इस प्रकार था :

"प्रिय श्री कृष्णानन्द जी ,

२६-७-५५ का पत्र मिला । आपके ऊपर पड़ी भारी विपत्ति के लिये मैं संवेदना प्रकट करता हूं । पत्नी विरह मानव के लिये दु:ख का अन्त:रूप है । सरसता से चलता हुआ जीवनक्रम जीवन सहचरी के अभाव में उलझ जाता है, नई समस्यायें खड़ी कर देता है । ऐसी परिस्थिति में अपने-आप को संभाले रहने के लिये भारी धीरज की आवश्यकता होती है । ईश्वर करे आपको अपने अन्त:करण में वह धीर भाव प्राप्त हों[2]

अंत में इस विषय पर एक भुक्त-भोगी साहित्यकार द्वारा लिखे गये पत्र को देखिए । पत्र कवि बच्चन[3] द्वारा निरंकारदेव सेवक को लिखा गया है । पत्र का प्रारम्भ औपचारिक है, परन्तु यह औपचारिकता क्रमश: घटती हुई अन्त में आत्मीयता एवं व्यवहारिकता की झलक दे जाती है :

प्यारे भाई,

अस्वस्थ होने के कारण युनि० बन्दहोने के एक मास पूर्व ही मैं छुट्टी लेकर पहाड़-चला गया था । लौटने पर तुम्हारा पत्र मिला ।पढ़कर जी धक् से हो गया ।

---

१ "फीरोजाबाद सन्देश", पं० बनारसीदास चतुर्वेदी अभिनन्दन-अंक, पृ० २२ ।
२ "डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्र" (१९७४), पृ० ५३ ।
३ "बच्चन के पत्र" (१९७२), पृ० १९ ।

सरला इस संसार में नहीं रही । भगवान उनकी आत्मा को शान्ति दे, तुम्हें धीरज । मुझे तो उनका वही रूप- याद है- होली का दिन था । हम तुम, राम जी खाट पर बैठे थे, खाने के साथ-साथ कविता-पाठ भी हो रहा था, सरला भांति-भांति के व्यंजन बनाकर हमें परोस रही थीं, कितनी प्रसन्नता उनके चेहरे पर थी । आज सहसा वह चित्र मुझे फिर-फिर याद आ जाता है । मनुष्य स्मृतियां संजोने के सिवा कर ही क्या सकता है । मैं भुक्त-भोगी हूं- तुम्हारी दशा का अनुमान कर सकता हूं । प्यारे भाई, "संवेदना प्रथा है केवल", अपने हाथों के सिवा अपना आंसू पोंछने में कोई समर्थ नहीं होता ।"

इस प्रकार इन पत्रों की लेखन-पद्धति में भी पर्याप्त विविधता मिलती है ।

(iii) बधाई-पत्र :

बधाई पत्र हम अपने इष्ट-मित्रों एवं स्वजनों की सफलता पर, किसी विशिष्ट त्यौहार पर, जन्म-दिवस पर, नववर्ष पर आदि अवसरों पर भेजते हैं । अन्य रूढ़िगत पत्रों की भांति यह भी एक रूढ़-पत्र है, परन्तु इसकी शैली भी लेखक के व्यक्तित्व के अनुरूप विविध रूप धारण कर लेती है । यही नहीं, एक ही व्यक्ति द्वारा एक ही विषय पर भिन्न-भिन्न समय में लिखे गये पत्रों में शैली का रूप बदलता हुआ दीखता है । उदाहरणार्थ कविवर सुमित्रानन्दन पन्त द्वारा बच्चन जी के जन्म-दिवस पर लिखे गये ३०-११-१९५७ तथा १४-११-१९६४ पत्रों के निम्नांकित अंश अनुक्रम से द्रष्टव्य हैं :

-१- "तुम्हारे ५१ वें वर्षगांठ के अवसर पर शरीर से न आ सका, मन से वही था । तुम्हें मेरी बहुत-बहुत शुभकामनाएं (१) पोएट-लौरिएट बनो (२) नोबल प्राइज़ मिले (३) बहुत बहुत लंबी उम्र हो, १२५ साल (४) बहुत बड़ा मकान बनाओ (जिसमें एक कमरा मेरा भी रहे)[1]

---

१ "कवियों में सौभाग्य सन्त" (१९६०), पृ० ८५ ।

-२- " तुम्हारा जन्म दिवस अब के उच्च स्तर पर दिल्ली वाले मना रहे हैं - शास्त्री जी उद्घाटन करेंगे - यह जानकर बहुत प्रसन्नता हुई । मेरी हार्दिक अगणित बधाइयां तथा शुभकामनाएं लो । शेष आयु में जो अभी कम से कम ५० साल की होगी तुम खूब लिखो पढ़ो - १-२ दर्जन महाकाव्य, अनगिनती लोकगीत और मुक्तकाव्य लिखो- भोजन कम करो, भजन अधिक करो-यद्यपि माइन्ड ही अल्टीमेट रिअलिटी है, बकौल तुम्हारे ।[१]

इसी प्रकार बच्चन जी द्वारा नववर्ष की शुभकामनाओं के लिए डा० जीवन प्रकाश जोशी के नाम १६-१-१९५८ तथा १-१-१९६३ को प्रेषित पत्रों के निम्न अंश एक जैसे होते हुए भी कथन की अभिव्यक्ति की दृष्टि से भिन्न हैं -

-१- "नए वर्ष की शुभ कामनाओं के लिये आभारी । मैं भी कहूं :

वर्ष नव
हर्ष नव ,
जीवन उत्कर्ष नव ।"[२]

-२- " १९६३
यह वर्ष
निराशा-निशा देश की दूर करे ।
नव किरण
तुम्हारे आंगन में नव ज्योति भरे ।"[३]

इन उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि रूढ़-पत्र भी सिद्ध हस्त कलाकार की लेखनी के स्पर्श से नवीनता और विविधता की छटा धारण कर लेते हैं । अत: सामान्य पत्रों से ये पत्र कहीं अधिक मोहक एवं रोचक प्रतीत होते हैं ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि पत्र के रूप-विधान में समय-समय पर अनेक परिवर्तन होते रहे हैं ।आधुनिक युग में हिन्दी साहित्यकारों ने इष्ट-मित्रों को जो पत्र लिख भेजे हैं, वे शिल्प की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। यद्यपि ये पत्र प्रयासपूर्वक या प्रकाशन की दृष्टि से नहीं लिखे गये हैं, किन्तु अपनी सहज और सुन्दर लेखन-पद्धति के कारण प्रकाश में आकर सर्व सुलभ बन गये हैं ।

---

१ "बच्चन के नाम पन्त के दो सौ पत्र" (१९७१), पृ० १८० ।
२ "बच्चन : पत्रों में" (१९७०), पृ० ४५ । ३- -वही-, पृ० ६२ ।

(ख) हिन्दी पत्र-साहित्य में भाषा-विधान :

पत्र गद्य-साहित्य की एक विधा है । पत्र की भाषा सामान्यत: सरल, स्वाभाविक और वार्तालाप की ध्वनि से युक्त होती है । यद्यपि अनेक हिन्दी कवियों ने अपने इष्ट-मित्रों तथा आत्मीयजनों को पद्य में भी पत्र लिखे हैं, किन्तु पत्र-लेखन के लिए गद्य ही सर्वाधिक उपयुक्त माध्यम है । यति, गति और मात्रा के बन्धन के कारण पद्य-पत्रों में कुछ कृत्रिमता आ जाती है । पं० किशोरीदास वाजपेयी ने आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी को कुछ पद्य-पत्र लिखे थे । इन पत्रों के उत्तर में आचार्य द्विवेदी ने उनको लिखा था -

"- - - आपने तो पद्य-पत्रों का तांता बांध दिया । १७-ता० का भी पत्र मिला । आप भावमयी कविता कर सकते हैं । आजकल के कितने ही तुक्कड़ आपके सामने कोई चीज़ नहीं । कविता का प्रकाशन अब शुरू कर दीजिए । मगर मुझे जब कभी लिखना गद्य में ही लिखना । गद्य में बिना प्रयास जी खोलकर लिखने को मिलता है ।"[१]

इस प्रकार पत्र के लिए गद्य-भाषा ही उपयुक्त माध्यम है । हिन्दी में प्राचीनकाल से अब तक का जो पत्र-साहित्य प्रकाशित हुआ है, वह हिन्दी के रूपात्मक विकास के अध्ययन की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है ।

हिन्दी का प्राचीन पत्र-साहित्य हिन्दी की विभिन्न बोलियों में ही मिलता है । सबसे प्राचीन पत्र राजस्थानी में मिलते हैं । ब्रजभाषा का प्राचीन पत्र-साहित्य राधावल्लभ सम्प्रदाय के हितहरिवंश जी के नाम से प्रसिद्ध दो श्रीमुख पत्रियों में ही मिलता है और इन पत्रियों की भाषा भी अर्वाचीन शैली के निकट जान पड़ती है । खड़ी बोली गद्य की छटा हमें महाराजा छत्रसाल के पत्रों में विशेषरूप से मिलती है । मराठी क्षेत्र से सम्बन्धित १८ वीं शती के हिन्दी पत्र तथा ईस्ट इंडिया कम्पनी के प्रारम्भिककाल में नागरी अक्षरों में लिखे गये पत्रों में भी खड़ी बोली के अनेक शब्द-रूप उपलब्ध होते हैं । इस प्रकार पत्रों में हिन्दी के प्राचीन स्वरूप की स्पष्ट झलक मिलती है । इस दृष्टि से हिन्दी के प्राचीन और आधुनिक पत्र-साहित्य में भाषा-विधान को समझने के लिए पत्रों में

---

१ "आचार्य द्विवेदी और उनके संगी-साथी" (१९६५), पृ० ३९ ।

प्रयुक्त शब्द-रूपों, वाक्यों, मुहावरों, कहावतों आदि का अध्ययन समीचीन होगा ।

(१) शब्दरूप :

हिन्दी पत्र-साहित्य में तत्सम, तद्भव, उर्दू, फारसी, अरबी, अंग्रेजी आदि के शब्द पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं । राजस्थानी-पत्रों में पुराने ढंग के सविभक्तिक और अनुस्वारान्त पद-"वचनायतुं", "कणानूं" आदि के साथ अर्वाचीन शब्द-रूप वांचजो, करजो आदि भी मिलते हैं । उदाहरण के लिए "परम्परा" में प्रकाशित सबसे पुराने संवत् १६७१ के पत्र का निम्नांकित अंश देखिए -

- - - कुंवार श्री गजसिंघजी वचनायतुं पढ़ियार भीवां दोसे सुपरसाद वांचजो । - - - बीजोई कणानूं न लागै छै ।"[१]

इससे प्रकट होता है कि प्राचीनभाषा में सविभक्तिक और अनुस्वारान्त पद प्रयुक्त होते थे ।

मराठी क्षेत्र से सम्बन्धित १८ वीं शती के हिन्दी पत्रों का भाषा-वैज्ञानिक दृष्टि से विस्तारपूर्वक अध्ययन डा० काशिनाथ शंकर केलकर ने अपने "१८ वीं शती के हिन्दी पत्र" शीर्षक शोध प्रबन्ध में किया है । ईस्ट इंडिया कम्पनी के प्रारम्भिक शासनकाल से सम्बन्धित हिन्दी पत्रों के शब्द-रूपों का परिचय डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने अपने "ईस्ट इंडिया कम्पनी के प्राचीन पत्रों की भाषा का स्वरूप" शीर्षक लेख में दिया है । इस लेख में शब्दावली की चर्चा में उन्होंने लिखा है कि -

"प्रस्तुत पत्रों में तद्भव शब्दावली-प्रधान है । संस्कृत, फारसी, अरबी के अनेक शब्द आये हैं किन्तु हिन्दी या हिन्दुस्तानी का भेष धारण करके और एक ओर जहां परजा, आगामी, इति, तुरंत, सामर्थ, संतान आदि आते हैं तो दूसरी ओर एजेन्ट, कलेक्टर, मजसटरेट, इस्तहार, कम्पनी शब्द भी दिखाई पड़ते हैं । प्रादेशिक बोलियों के शब्दों का भी इन पत्रों में स्वागत हुआ है । इश्तहारों और इकरारनामों में

---

१ "परम्परा" भाग - २४ १९६७, पृ० १-२ ।

फारसी शब्दों का बाहुल्य है जो कम्पनी सरकार की फारसी न छोड़ने की नीति का द्योतक है ।"[1]

हिन्दी पत्रों में एक ही शब्द के लिए विविध रूप भी मिलते हैं । प्राचीनकालीन पत्रों में तो ऐसा अनेक स्थानों पर हुआ है, क्योंकि पत्र लिखनेवाले लोग सतर्क नहीं थे । अर्वाचीन युग के आरम्भ तक हिन्दी-गद्य का रूप निश्चित नहीं हुआ था । स्वामी दयानन्द सरस्वती के पत्रों में भी पत्र लिखने वालों ने कहीं "दानापुरा" का "दीनापुर" कर दिया है।[2] यह तो पत्र लिखनेवालों का प्रमाद कहा जायेगा किन्तु भारतेन्दु-युग और द्विवेदी-युग के पत्र-लेखकों ने भी जो स्वयं पत्र-लेखक थे, एक ही शब्द के लिए विविधरूपों का प्रयोग किया है । अत: आगे इस सम्बन्ध में पृथक् से चर्चा की गयी है ।

(अ) एक ही शब्द के लिए विविध रूप :

आधुनिक युग के कुछ पत्र-लेखकों ने अपने पत्रों में एक ही शब्द को दो रूपों प्रयुक्त किया है । भारतेन्दु-युग में "प्रेमघन" जी के पत्रों में यह प्रवृत्ति पाई जाती है । उदाहरण के लिए यहां हम पं० रामगरीबचौबे के नाम लिखे उनके एक पत्र से दो उद्धरण प्रस्तुत करते हैं :-

१ "उत्तर में फैजाबाद से भी लखनऊ आदि की ठेठ से जिसका मेल मिलता है ।"[3]

२ "- - - जिला गोंडा तहसील उतरौला की ठेठ जिसका उदाहरण आपको उसी भारत सौभाग्य पृ० ५६ में कृषि कर्म के पाठ में मिलेगा ।"[4]

इन उद्धरणों से स्पष्ट होता है कि भारतेन्दु-युग में सर्वनाम के दो रूप प्रयुक्त होते थे ।

द्विवेदी-युग के प्रसिद्ध साहित्यकार श्रीधर पाठक के पत्रों में भी "उस्का", "उन्को" आदि रूप मिलते हैं । आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी

१ "इस्ट इंडिया कम्पनी के प्राचीन पत्रों की भाषा का स्वरूप" (लेख) "परिप्रेक्ष्य और प्रतिक्रिया" (१९७२), पृ० ३९ ।

२ "ऋषिदयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन" (१९५५), पृ० १३३ ।

३ "प्रेमघन और उनका कृतित्व" (१९७६), पृ० १० ।

४ -वही-, ।

के नाम प्रेषित उनके पत्रों से दो वाक्य उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं :-

१ "जब आपका पत्र आया तब हम खाट में पड़े थे । हम उसको पाते ही खाट से उठ पड़े और हमने उसमें लिखी गयी बातों का पूर्णतया विचार किया ।"[1]

२ "जो लोग सैकड़ों बरसों के व्यवहार से बने हुए महावरों को बोलते, सुनते और लिखते पढ़ते रहे हैं उनको इस नूतन रीति से व्यवहृत शब्द अवश्य खटकते हैं ।"[2]

वर्तनी की दृष्टि से इन पत्रों का ऐतिहासिक महत्व है ।

(आ) शब्दों की पुनरुक्ति में संख्या का प्रयोग :

जब एक ही शब्द की आवृत्ति होती है तो उस शब्द को पुन: न लिखकर "२" संख्या डालकर उसका बोध करा दिया जाता था । भारतेन्दु-युग के अनेक पत्र-लेखकों ने अपने पत्रों में यह प्रणाली अपनाई है । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा पं० राधाचरण गोस्वामी को लिखे पत्र का निम्नांकित वाक्य देखिए-

"अबकी इसमें समालोचना छोटी-२ बहुत सुन्दर है ।"[3]

वर्तमान-युग के पत्र-लेखकों में यह प्रवृत्ति सबसे अधिक सुमित्रानन्दन पंत के पत्रों में देखी जा सकती है । बच्चन जी के नाम लिखे उनके पत्रों से कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं :-

१ "यहां से बहुत २ पहाड़ी ठंडी हवा और प्यार भेजता हूं ।"[4]

२ "दिल्ली में तुम लोगों से जितना अभूतपूर्व स्नेह मिला उसकी बार २ याद आती है ।"[5]

३ "तुम्हारे महान उद्देश्य की पूर्ति ठीक २ नहीं हो सकेगी ।"[6]

---

१ "द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र" (१९५८), पृ० १९९ ।
२ -वही-, पृ० १९७ ।
३ "भारतेन्दु-ग्रंथावली-३" (सं०२०१०वि०), पृ० ९७० ।
४ "कवियों में सौम्य-संत" (१९६०), पृ० ८७ ।
५ "पंत के सौ पत्र : बच्चन के नाम" (१९७०), पृ० १७ ।
६ "पंत के दो सौ पत्र : बच्चन के नाम (१९७१), पृ० १९३ ।

(इ) अहिन्दी शब्दों को उनके मूल उच्चारण के अनुरूप लिखने की प्रवृत्ति :

हिन्दी के अधिकतर पत्र-लेखकों ने अंग्रेजी और अरबी-फारसी के शब्दों को उनके मूल उच्चारण के अनुरूप लिखने का प्रयास किया है । कुछ प्रमुख पत्र-लेखकों के पत्रों से उदाहरण यहां प्रस्तुत किये जाते हैं :-

१ पर आपका माफ़ी मांगना अनुचित हुआ ।[१]

२ कल आपकी हस्त-पुस्तक और प्रूफ़ पढ़ा ।[२]

३ ढोंगी लीडरों का ज़माना है, मौज है उनकी ।[३]

४ न्यूज़ बुलेटिन बारी-बारी से मेम्बरों के पास जाएं- यह प्रस्ताव दफ़्तरों की दृष्टि से व्यावहारिक नहीं ।[४]

५ हम लोग सिंधिया हाउस के गोवन ब्रदर्स में रिहर्सल करते हैं ।[५]

(ई) समानार्थक शब्दों की पुनरावृत्ति :

हिन्दी के कुछ पत्र-लेखकों ने अपने पत्रों में कहीं-कहीं समार्थक शब्दों का तांता बांध दिया है । पं० पद्मसिंह शर्मा के पत्रों में यह प्रवृत्ति विशेषरूप से पायी जाती है । एक उदाहरण लीजिए :-

"- - - - भगवान् उनकी आशा शीघ्र पूरी करे । "आमीन", "एवमस्तु", अल्ला हो अकबर । वन्देमातरम् । इनकलाब ज़िन्दाबाद । साम्राज्यवाद का क्षय हो । राष्ट्रपति की जय हो । भारत माता की जय । गांधी बाबा की जय ।"[६]

इससे प्रकट है कि पं० पद्मसिंह शर्मा का शब्द-ज्ञान बहुत गहरा था ।

---

१ "द्विवेदी-पत्रावली (१९५४), पृ० १०३ ।

२ -वही-, पृ० १०२ ।

३ "पद्मसिंह शर्मा के पत्र" (१९५६), पृ० ३१ ।

४ "बच्चन के नाम पन्त के दो सौ पत्र" (१९७१), पृ० ६३ ।

५ "बच्चन : पत्रों में" (१९७०), पृ० ५४ ।

६ "पद्मसिंह शर्मा के पत्र" (१९५६), पृ० ८४ ।

(२) वाक्य-रचना :

भाषा-विधान में वाक्य-रचना का अपना महत्व होता है। प्राचीनकालीन पत्रों की वाक्य-रचना प्राय: सरल और निरंकृत है। आधुनिक युग में लिखे गये पत्रों में अनेक प्रकार के वाक्य मिलते हैं। प्रमुख पत्र-लेखकों की वाक्य-रचना को ध्यान में रखकर यहां वाक्यों को दो भागों में बांटा गया है- (अ) लघु आकारवाले वाक्य और (आ)बृहत् आकारवाले वाक्य।

(अ) लघु आकार वाले वाक्य :

अधिकतर पत्र-लेखकों ने लघु आकार वाले वाक्यों का ही प्रयोग किया है। जैसे

१ आजकल हम अपने जन्म-ग्राम में हैं। ४ अगस्त तक कानपुर जाने का विचार है। आपका कृपापत्र मिला। समानार्थक पदों के लिए धन्यवाद।[१] (सरल, सूचनात्मक, छोटे-छोटे वाक्य)

२ २७ नवंबर को तुम्हारा जन्मदिवस है- तुम्हारे लिए क्या उपहार लाया जाए - सोचना है - तुम भी मदद कर सकते हो सुलझाने में-[२]

(विचार प्रवाह के अनुसार लघु वाक्य)

३ "क्या आपका वह खून बिलकुल पानी हो गया ? हाथ बटाइये, चल गया तो ठीक है। नहीं तो "मस्तराम" के सोंटे से।"[३]

(प्रश्न और अनुरोध मिश्रित लघु वाक्य)

४ "उधर यशपाल जी की स्वर्ण जयंती की तैयारी और लोकायतन का प्रूफ।"[४]

(क्रिया रहित लघु वाक्य)

---

१ "द्विवेदी-पत्रावली" (१९५४), पृ० ८७।
२ "बच्चन के नाम पंत के दो सौ पत्र" (१९७१), पृ० ३५।
३ "निराला की साहित्य साधना"-३ (१९७६), पृ० २६७।
४ "पंत के दो सौ पत्र",
पृ० ९८।

(आ) बृहत् आकार वाले वाक्य :

हिन्दी पत्र-साहित्य में ऐसे वाक्य अपेक्षाकृत कम हैं । दो उदाहरण प्रस्तुत हैं :- १ "अब चौथी बात यह है इस बीमारी की अवधि सम्बन्धी मेरे मत से यह रक्त क्षीणता लोह तत्व की कमी का काल १ जुलाई तक है वहां तक सतर्क रहकर इलाज भी सावधानी से होना ~~चाहिए~~ चाहिए, यहां तक लाभ होना, फिर एकदम परिवर्तन, वजन में कमी, या परिवर्तन-क्रम स्थगित हो जाना शक्य है, यह स्टेज खतरे की बन सकती है, १ जुलाई से आगे भी मैं तकलीफ फाल्गुन मास तक बिलकुल जाते हुए नहीं देखता, तब तक एकदम आकस्मिक परिवर्तन हो सकते हैं और लाभप्रद भी हो सकते हैं किन्तु १७ जुलाई से इस अवस्था से कुछ लाभ की आशा विशेष हो सकती है ।"[1]

२ "जहां जरूरी समझें वहां भाषा या शैली कायम रखने के लिए मेरे सुझावों में परिवर्तन उचित होगा ही परन्तु मेरा विचार है कि जो भी प्रसंग उठाया जाय उसका स्पष्टीकरण आवश्यक होगा ।"[2]

(३) विरामादि चिह्नों का प्रयोग :

प्राचीनकालीन पत्रों में प्राय: विरामादि चिह्नों का प्रयोग नहीं हुआ है, पर आधुनिकयुग के पत्रों में ऐसा नहीं है । बड़े और विस्तृत वाक्यों में भाव के पूर्ण स्पष्टीकरण के लिए विरामादि चिह्नों के प्रयोग अत्यन्त आवश्यक हैं । अधिकतर हिन्दी पत्र-लेखकों ने विरामादि चिह्नों के प्रयोग में सतर्कता करती है । किन्तु श्रीधर पाठक के पत्रों में पूर्णविराम स्थान पर हायफन (-) का प्रयोग किया गया है ।[3] निराला, पन्त, बच्चन आदि पत्र-लेखकों ने निर्देश चिह्न का प्रयोग अधिक मात्रा में किया है । जैसे :-

१ "लखनऊ में दो-तीन किताबें निकलने को हैं- कुल्लीभाट वगैरह, उन्हीं के फेर में हूं ।"[4]

---

१ "प्रसाद के नाम पत्र" (१९७६), पृ० १९८ ।
२ "यशपाल के पत्र" (१९७७), पृ० १०७ ।
३ "द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र", (१९५८), पृ० १९७-१९९ ।
४ "निराला के पत्र" (१९७०), पृ० १६५ ।

२ "गोली मार दीजिए - हम लोग भी साहित्य के बादशाह हैं - अन्धे क्या जानें- अच्छा सप्रेम । विवाह में ले चलियेगा कि नहीं ?"[1]

३ "कल अश्क जी का पचासवीं सालगिरह पर अभिनन्द था - अभिनन्दन पत्र मुझी से लिखवाया और पढ़ाया गया - महादेवी जी ने अध्यक्षता की ।"[2]

४ दीपावली अब के फीकी रही- तुम्हें सपरिवार बहुत बहुत बधाई भेजता हूं- फूलो फलो ।"[3]

(४) मुहावरों का प्रयोग :

मुहावरे किसी भी भाषा के प्राण होते हैं । इन लाक्षणिक प्रयोगों से भाषा की अभिव्यंजना शक्ति बहुत बढ़ जाती है । मुहावरेदार भाषा में लिखे गये पत्र भावग्राहक और पाठक को अभिभूत कर लेते हैं । पं० पद्मसिंह शर्मा, पं० बनारसीदास चतुर्वेदी, मुंशी प्रेमचन्द, डा० वासुदेव शरण अग्रवाल, सुमित्रानन्दन पंत आदि के पत्रों में मुहावरों का प्रयोग स्थान-स्थान पर देखने को मिलता है । उदाहरणार्थ :-

१ "- - - पर अब वे बातें आई-गई हुई ।" न वैरमुद्दीपयति प्रशान्तम् ।" गड़े मुरदे उखाड़ने में कोई लाभ नहीं ।"[4]

२ "अंग्रेजी के तख्तों को उखाड़ना जैसी मूर्खतापूर्ण कार्यवाही जो लोग कर सकते हैं उनकी अक्ल पर तरस आता है ।"[5]

३ "साफ दिल से की गयी छींटेकशी का आपको बुरा न मानना चाहिए, अगर आप इतने तुनुकमिज़ाज हो जायंगे तो आप अपनी बुराई करनेवालों को और प्रोत्साहन देंगे कि वह आपकी चुटकी काटें ।"[6]

---

१ "निराला की साहित्य-साधना-३" (१९७६), पृ० २३९ ।
२ "पंत के सौ पत्र": बच्चन के नाम" (१९७०), पृ० ५४ ।
३ "पंत के दो सौ पत्र : बच्चन के नाम", (१९७१), पृ० १०९ ।
४ "पद्मसिंह शर्मा के पत्र", पृ० १४ ।
५ "डा० बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र", पृ० २५७ ।
६ "चिट्ठी-पत्री" भाग-२, पृ० ७९ ।

४ "क्या उस समय हमें अपनी भाषा के टुटपुंजियापन पर खीझना तो न पड़ेगा । गुड़ के कोल्हू में जाकर जो साहित्यिक सौ, दो सौ वहीं के शब्द और मुहाविरों में उस समस्त प्रक्रिया का वर्णन साहित्य की भेंट में चढ़ायेगा, वह सचमुच भारी सेवा करेगा ।"[1]

५ "तुमने अपनी भूमिका में मेरे ऊपर कौन-सा नया छींटा डाला है- तुम हमेशा मेरी टांग खींचते रहते हो -"[2]

प्राचीन पत्रों में भी मुहावरों का प्रयोग हुआ है । महाराजा छत्रसाल के पत्रों की भाषा मुहावरेदार और मधुर है। सवाई जयसिंह नाम लिखे एक पत्र का यह अंश देखिए- " - - - अपर उहां तुरकनि के विग्रह की हकीकत अपुनु जातियतु है जु हनि मैं आपुस में बंस अग्नि उठी है ।"[3] डा० काशीनाथ शंकर केलकर ने "१८ वीं शती के हिन्दी पत्र" शीर्षक अपने शोध-प्रबन्ध में प्राचीन पत्रों में प्रयुक्त मुहावरों की लम्बी सूची दी है ।[4]

(५) कहावतों का प्रयोग :

कहावतों का सामान्य जन-जीवन और साहित्य दोनों में ही महत्वपूर्ण स्थान है । पत्रों में वार्तालाप के समान कहावतों का सहजरूप में प्रयोग किया जाता है । कहावतों की दलील, आप्त वाक्य की तरह ही प्रामाणिक मानी जाती है । डा० कन्हैयालाल सहल के शब्दों में "कहावतें भाषा का श्रृंगार है और उनके प्रयोग से भाषा में सजीवता और स्फूर्ति का संचार हो जाता है । वाणी में कहावत का वही स्थान है जो भोजन में नमक का ।"[5]

हिन्दी पत्र-साहित्य में कहावतों का विशाल भण्डार भरा है । इसमें अंग्रेजी, संस्कृत, हिन्दी उर्दू आदि कई भाषाओं की कहावतें

---

१ "डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्र" , पृ० १६१ ।
२ "पन्त के दो सौ पत्र", बच्चन के नाम", पृ० ६३ ।
३ "ऐतिहासिक प्रमाणावली और छत्रसाल" (१९७३), पृ० १५८ ।
४ "१८ वीं शती के हिन्दी पत्र" (१९७०), पृ० २२०-२४ ।
५ "राजस्थानी कहावतें : एक अध्ययन" (१९५८), पृ० ३ ।

प्रयुक्त हैं । यहां प्रमुख भाषाओं की कहावतों के दो-दो उदाहरण प्रस्तुत करते हैं ।

(अ) अंग्रेजी में प्रयुक्त कहावतें :

पं० बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्रों में अंग्रेजी कहावतों का विशेष प्रयोग हुआ है । देखिए -

1- "Enjoy yourself - It is already too late".

६० वर्षोंवालों के लिए सर्वथा उपयुक्त है और ७९ वालों के लिये अनिवार्य[१] ।

२- Be the man thou Seckest"

जिस आदमी की तुम तलाश में हो वह खुद ही बन जाओ ।[२]

(आ) संस्कृत कहावतें :

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, आचार्य विनोबा भावे , आचार्य पं० पद्मसिंह शर्मा आदि के पत्रों में संस्कृत कहावतों प्रचुर उपयोग किया गया है । उदाहरण लीजिए -

१-आपने खूब जवाब दिया, शांति तो खंग होती है क्षमा भी होती है :- "क्षमाखंग करें यस्य दुर्जन: किं करिष्यति ।"[३]

२-अति स्नेह: पाप शंकी ।" अति स्नेह कारण ~~उल्टमठ~~ उल्टपटांग शंकाएं आने लगती हैं ।[४]

(इ) हिन्दी कहावतें :

पं० पद्मसिंह शर्मा, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल आदि पत्रों में हिन्दी कहावतों का सुंदर प्रयोग हुआ है । जैसे -

१-"मसखरेपन का जवाब तो उन्हें अच्छा मिल गया । "सौ सुनार की और एक लुहार की" इसी को कहते हैं ।"[५]

२-बुद्धिमानी यह है कि हम जितनी भूमि को जोत सकें, उतने ~~[illegible]~~ ।

१" डा० बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र", पृ० १७४ ।

२ -वही-, पृ० १७५ । ३- द्विवेदी-पत्रावली, पृ० ९२ ।

४-"विनोबा के पत्र-बजाज परिवार के नाम", पृ०१०।

५-"द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र-", पृ० १०१ ।

में ही हल चलावें ।"[1]

(ङ) उर्दू कहावतें :

उर्दू कहावतों का अधिकाधिक प्रयोग पं० पद्मसिंह शर्मा के पत्रों में मिलता है । यथा -

१-"रख तसल्ली कि यूं मुकद्दर था"[2]

२-"जहां में अपने सिवा किसी पै कभी भरोसा न कीजिएगा जो अपना साया भी हो तो उसका तसव्वर अपना न कीजिएगा ।"[3]

(६) अलंकारों का प्रयोग :

कवि-साहित्यकार अपने पत्रों में अनायास रूप से अलंकारों का प्रयोग कर देते हैं । इससे भाषा में सौंदर्य आ जाता है । अलंकार की दृष्टि से पत्रों के गद्यात्मक वाक्यों को हम दो विभागों में रख सकते हैं :-

(अ) निरलंकृत वाक्य और

(आ) अलंकृत वाक्य ।

(अ) निरलंकृत वाक्य :

हिन्दी पत्र-साहित्य में इस प्रकार के वाक्यों की संख्या बहुत अधिक है । कवि-साहित्यकारों के सभी पत्रों में अलंकृत वाक्य नहीं मिलते । सीधे, सरल और भावपूर्ण वाक्य ही प्राय: सर्वत्र प्रयुक्त किये गये हैं ।जैसे-

-१-"मान्यवर गणेश जी प्रणाम । कृपापत्र मिला । अनेकानेक धन्यवाद । बिहार में व्रज भाषा और हिन्दी के सेवा की एक विशिष्ट परम्परा रही है । आप सदृश कर्तव्यनिष्ठ साहित्यिक बन्धु उस शुभ्र परम्परा का सम्यक् निर्वाह कर रहे हैं ।"[4]

१ "डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्र", पृ० १०३ ।

२ "पद्मसिंह शर्मा के पत्र", पृ० ६० ।

३ -वही-, पृ० ६५ ।

४ "बाबू वृन्दावन दास के पत्र",
पृ० ८९ ।

-२- "प्रिय मधुरेश जी, आपका ९-९-६३ का पत्र मिला, धन्यवाद। अबतक आपके पिछले पत्र के उत्तर में मेरा पत्र आपको मिल चुका होगा।"[१] इत्यादि।

(आ) अलंकृत वाक्य :

हिन्दी के कुछ पत्र-लेखकों के पत्रों में उनके कवित्वमय व्यक्तित्व की छाप उनकी वाक्य-रचना पर सहज-स्वाभाविक रूप में ही पड़ गयी है। आचार्य पं० पद्मसिंह शर्मा, महाकवि निराला, कविवर सुमित्रानन्दन पन्त आदि के पत्र उनके कवित्वमय व्यक्तित्व से ओतप्रोत हैं। भारतेन्दु-युग के पत्र-लेखकों में प्रेमघन जी का नाम भी इस दृष्टि से उल्लेख्य है। यहाँ हम विविध अलंकारों से युक्त वाक्यों को उदाहरण के रूप में प्रस्तुत करते हैं :

(i) अनुप्रास युक्त :

१. "इस बार तो आपने 'विनोद-विन्दु' नहीं विनोद की वर्षा कर दी है।"[२] (वर्णानुप्रास)

२. "खैर, आज तो अचानक याद आई, हाथ ने लेखनी उठाई तो प्रथम ही क्षमा क्षमा की पुकार मचाई फिर जो उसने बुद्धि दौड़ाई, तो कहीं अक्किल चकराई, कि प्रथम जो प्राइवेट पत्री थी पाई, उसे आपने हिंदोस्तान में छपाई, इससे अब और भी उर समाई, कि हाय क्यों वह बेसुरी गीत गाई, कि जिसे सुन हो हंसाई और असल बात मन से भुलाई।"[३]
(अन्त्यानुप्रास)

३. "आपका पत्र आया - पढ़कर चित्त हुलसाया आपने जो गोपिका गीत गाया उसे देखकर ऐसा आनन्द का लशकर छाया मानों मुझे जवाहरात का डिब्बा पाया और मन उसमें ऐसा सरसाया कि बारबार पढ़कर भी नहीं अघाया। - - -"[४] (वर्णानुप्रास तथा अन्त्यानुप्रास की मिश्रित छटा)

---

१ "यशपाल के पत्र", पृ० ६३।

२ "पद्मसिंह शर्मा के पत्र", पृ० ४१।

३ "प्रेमघन और उनका कृतित्व", परिशिष्ट-२(अ), पृ० ७-८।

४ "मनोरंजक संस्मरण (१९७६), श्री नारायण चतुर्वेदी : मनोरंजक पत्र", पृ० २०९।

(ii) यमक युक्त :

"यात्रा सम्बन्धी व्यस्तता के कारण तुम्हारे पिछले पत्र का उत्तर मैं देर से दे रहा हूं ।"[1]

(iii) श्लेष युक्त :

"छायावादी कवियों को मन तकलीफ दे यह बात तो समझ में आती है, पर पेट कष्ट दे यह तो विधाता का सरासर अन्याय है ।"[2]

(iv) उपमा युक्त :

"दोनों पत्र मिले-जुड़वा भाइयों की तरह ।"[3]

(v) रूपक युक्त :

"कवियों ने कविता-कुमारी को personify किया है : यह वे हर जड़ के लिए कर सकते हैं - - -"[4]

(vi) उत्प्रेक्षा युक्त :

"अब तो अपने आवासों के रोम-रोम को उन्होंने मानों देवदारूमय बना रखा है ।"[5]

इस प्रकार प्रतिभावान साहित्यकों के पत्रों में अनायास रूप से ऐसे अनेक अलंकार-मोती यत्र-तत्र विकीर्ण हो गये हैं । इन मुक्ताओं से उनकी पत्र-मालिकाएं और अधिक निखर उठी हैं ।

उपर्युक्त विवेचन से प्रकट होता है कि भाषा-विधान की दृष्टि से पत्र-साहित्य का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है । इससे एक ओर जहां हिन्दी भाषा के रूपात्मक विकास पर प्रकाश पड़ता है, वहां दूसरी ओर हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यकारों के गद्यकार का परिचय भी मिलता है । पत्र-साहित्य में भाषा-विधान के अनुशीलन से यह भी ज्ञात होता है कि पत्रों में बोलचाल की भाषा के साथ परिष्कृत-अलंकृत भाषा की छटा भी मिल जाती है ।

---

१ "बच्चन के नाम पंत के दो सौ पत्र" (१९७१), पृ० १६२ ।

२ -वही-, १६५ ।

३ "डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्र" (१९७४), पृ० १८० ।

४ "निराला के पत्र", पृ० ९८ ।

५ "डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्र", पृ० १०८ ।

(३) हिन्दी पत्र-साहित्य में विविध गद्य-शैलियाँ :

भाषा और शैली का अभिन्न सम्बन्ध है । भाषा के मुख्य दो रूप हैं - एक पद्य-भाषा और गद्य-भाषा । पत्र-लेखन के लिए सर्वाधिक उपयुक्त गद्य-भाषा ही है । कुछ विद्वानों का विचार है कि गद्य के विकास के उपरान्त शैली का जन्म होता है । अत: गद्य और गद्य-शैली में अंतर है । इस सम्बन्ध में डा० जेकब पी० जार्ज का निम्नलिखित मंतव्य दृष्टव्य है :-

" शैली प्रत्येक अभिव्यक्ति का साधारण धर्म नहीं है, वह विशिष्ट अभिव्यक्ति का सहज धर्म है । गद्य इन तत्वों से अभिव्यक्त हो जाता है तो शैली प्रादुर्भूत हो जाती है । गद्य में जब अभिव्यक्ति-मात्र के भावप्रेरित वैशिष्ट्य जिसके औचित्य का निर्णय पाठक करेंगे और जो अभिव्यक्ति को पूर्ण, प्रभावोत्पादक तथा आकर्षक बनाने के लिए सक्षम है - का समावेश होगा, तब वह शैली पद का अधिकारी बन जाता है । दूसरे शब्दों में, गद्य शैली का केवल शरीर है, शैली की आत्मा गद्य का भावप्रेरित वैशिष्ट्य है ।"[१]

इससे प्रकट होता है कि गद्य और गद्य-शैली के बीच शरीर और प्राण जैसा संबंध है । जिस प्रकार शरीर और प्राण को एक दूसरे से पृथक् नहीं जा सकता, उसी प्रकार गद्य और गद्य-शैली को भी सर्वथा पृथक् करना सम्भव नहीं है, फिर भी कुछ क्षणों के लिए प्राणों से पृथक् शरीर की परीक्षा तो की ही जाती है । इस दृष्टिकोण के आधार पर हमने पूर्ववर्ती पृष्ठों में हिन्दी पत्र-साहित्य में भाषा-विधान के अन्तर्गत गद्य के बाह्य स्वरूप-शब्द-रूपों, वाक्य-रचना, व्याकरण-सम्बन्धी त्रुटियों, मुहावरों, कहावतों, अलंकारों आदि पर विचार किया है । अब यहाँ हम हिन्दी पत्र-साहित्य में प्राप्त विविध गद्य-शैलियों का परिचय देंगे ।यहाँ जिन गद्य-शैलियों का परिचय दिया गया है, वे गद्य-शैलियाँ प्राय: आधुनिक हिन्दी-पत्र-साहित्य से ही चुनी गयी हैं । कहीं-कहीं प्राचीन पत्रों की चर्चा भी की गयी है ।

१" आधुनिक हिन्दी गद्य और गद्यकार" (१९६६) ,
पृ० २७ ।

(१) तत्सम पदावली-सम्पन्न शैली :

सांस्कृतिक क्षेत्रों के व्यक्तियों तथा संस्कृत साहित्य के मर्मी विद्वानों के पत्रों में तत्सम पदावली-सम्पन्न शैली दृष्टिगत होती है। राजस्थान के प्राचीन जैन महात्माओं के जो आदेश-पत्र प्रकाशित हुए हैं, उनके आरम्भ में तत्सम पदावली का प्रयोग मिलता है।[१] हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ पत्र-लेखक पं० पद्मसिंह शर्मा के द्वारा आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी तथा पं० श्रीधर पाठक के नाम लिखे गये कुछ पत्रों के प्रारम्भ में भी तत्सम पदावली सम्पन्न शैली का प्रयोग किया गया है। उदाहरण के लिए पं०-श्रीधर पाठक के नाम लिखे उनके एक पत्र का प्रारम्भिक अंश यहां हम उद्धृत करते हैं :-

"श्रीमत्सु कवि-मार्मिक-मूर्धन्येषु परगुणपरमाणून् पर्वतीकृत्य-नित्यं निज हृदि विकसन्त: सन्ति सन्त: कियन्त: "इत्यभियुक्तोक्तिं स्वोदाहरणेन कालावपि चरितार्थमत्सु परमोदारचरितेषु श्रद्धाभाजनेषु श्री प्रदेषु श्री श्रीधरचरणेषु सांजलिबन्ध भूयोभूय: प्रणम्य निवेदयति।"[२]

हिन्दी साहित्यकारों में डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्रों में इस शैली का सविशेष और स्वाभाविक प्रयोग हुआ है। डा० अग्रवाल संस्कृत के धुरंधर विद्वान् थे, अत: उनके पत्रों में तत्सम पदावली का प्रयुक्त होना स्वाभाविक है। पं० बनारसीदास चतुर्वेदी के नाम लिखित उनके २४-११-१९४३ के पत्र का एक अंश यहां उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत है :-

"अपने में जो "विभूति" और "श्री" का पक्ष है, उस पर दृष्टिपात करो और अन्यत्र जहां पद्मा श्री के सौंदर्य का निवास है, वहां उसका आवाहन करके अपने निवास को अलंकृत करो। यदि मैं आपके अभिमत को ठीक समझा होऊं -जैसा कि मेरा विश्वास है - तो जनपद कल्याणीय और सेतुबन्ध दोनों ही हमारे साहित्य की प्रगति के लिए अनिवार्यत: आवश्यक है।"[३]

---

१ "देखिए: "राजस्थान के कुछ प्राचीन पत्र", सम्मेलन पत्रिका, पौष-ज्येष्ठ १८८८, पृ० १५०।

२ "द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र" (१९५८), पृ० १९१।

३ "डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्र" (१९७४), पृ० ११०।

वैसे तो भाव के तारतम्य के अनुसार हिन्दी के अनेक साहित्यकों के पत्रों में तत्सम-तद्भव-पदावलियां दृष्टिगोचर होती है, किन्तु उक्त साहित्यकों के पत्रों में तत्सम पदावली-सम्पन्न शैली विशेष रूप से परिलक्षित होती है ।

(२) तद्भव-पदावली-सम्पन्न शैली :

पूर्णत: तद्भव-पदावली में लिखा गया पत्र खोजना कठिन होगा, परन्तु यह कहा जा सकता है कि सामान्यत: सूचनात्मक तथा विवरणात्मक पत्रों में इस शैली का समावेश किया जाता है । हमारे देश-नेताओं—महात्मा गांधी, डा० राजेन्द्र प्रसाद, सेठ जमनलाल बजाज आदि के पत्रों में तथा साहित्यकों में पं० बनारसीदास चतुर्वेदी, बाबू वृन्दावन-दास आदि के कुछ पत्रों में इस शैली का प्रयोग हुआ है । कुछ उदाहरण नीचे दिये गये हैं :-

महात्मा गांधी सेठ जमनालाल बजाज को खान-पान के विषय में सूचना-सलाह देते हुए लिखते हैं :-

" तुम्हारी खुराक में थोड़ा-बहुत हेर-फेर सुझाता हूं । केले की कोई जरूरत नहीं । पपीते की भी अभी कोई जरूरत नहीं देखता । इस समय तुम्हारी खुराक में से दाल निकाल देनी चाहिए और हरी द्राक्षा-(अंगूर) अथवा मौसंबी, संतरा बढ़ा देना चाहिए । दूध अधिक लिया जा सके तो अच्छा होगा ।"[१]

पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने अपने जीवन का दार्शनिक दृष्टि-कोण प्रस्तुत करते हुए तथा अन्य हिन्दी नेताओं पर टिप्पणी करते हुए बाबू वृन्दावनदास को लिखा है -

"- - - हमारे नेता प्राय: आत्म केन्द्रित रहे हैं । उन्होंने इस बात की चिन्ता कभी नहीं की कि हमारे छुट भाइयों के मार्ग में क्या क्या कठिनाइयां हैं और वे कैसे दूर की जा सकती हैं । बाड़ी लगाकर

१" बापू के पत्र : बजाज परिवार के नाम" (१९६६),
संपा० काका कालेलकर, पृ० ८३ ।

साग तरकारी उगा लेना और स्वयं ही उनका उपयोग करना बस यही उनका लक्ष्य रहा है ।"[1]

(३) उर्दू-गर्भित शैली :

जैसाकि पीछे संकेत किया जा चुका है, हिन्दी पत्र-लेखन में आधुनिक युग के आरम्भ तक सर्व-साधारण में प्रचलित अरबी-फारसी शब्दों को निःसंकोचरूप से प्रयुक्त किया जाता था । डा० धीरेन्द्र वर्मा तथा डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय द्वारा सम्पादित "प्राचीन हिन्दी पत्र-संग्रह" के अनेक पत्रों में उर्दू-गर्भित शैली का प्रयोग हुआ है । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के कुछ पत्रों में भी उर्दू-गर्भित शैली की छटा देखने को मिलती है । जैसे , २८ मई १८७५ को "प्रेमघन" जी के नाम लिखा गया यह पत्र देखिए -

" मेरे प्यारे दोस्त

बाद सलाम व शौक मुलाकात व खत के वाजे हो कि खत आपका - - - और सत्य धर्म प्रचार ने के हालात लिये हुये आया और दिल को निहायत खुशी गशी मुझे उनकी- - - मंजूर की मगर उसकी शरायत व कवायत अगर मालूम हों आप कब खुद तशरीफ लाकर जुबानीहाल बयान फरमाइयेगा ? - - - - "[2]

पं० पद्मसिंह शर्मा के कुछ पत्रों में भी उर्दू की छटा यत्र-तत्र देखने को मिल जाती है । यथा आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी को एक पत्र में उन्होंने लिखा है -

" बहुत अच्छा । "जवाबेजाहलां बाशद खमोशी" पर ही अमल कीजिए । पर "भाषा और व्याकरण" के सिलसिले अभी जारी रखिए ।"[3]

पत्रों में उर्दू-गर्भित शैली का सर्वाधिक प्रयोग प्रेमचन्द जी ने किया है । अमृतराय और मदनगोपाल द्वारा सम्पादित "चिट्ठी-पत्री-भाग-१" के पत्र उर्दू-गर्भित शैली में ही लिखे गये हैं । एक उदाहरण लीजिए:-

---

१" डा० बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र" (१९७१), संपा० बाबू वृन्दावनदास पृ० १८८ ।

२" प्रेमघन और उनका कृतित्व" (१९७६), परिशिष्ट-२, पृ० १४ ।

३" द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र" (१९५८), पृ० १०० ।

"- - - फिलहाल मेरी हालत मुझे इजाजत नहीं देती है कि कुछ ईसार कर सकूं । यकीन मानिये, आपसे बसिद के दिल कहता हूं जब से यहां आया हूं सिर्फ दो सौ रुपये मेरे पास जमा हुए हैं । और वह भी सौ रुपये नाविल का मुआवजा है ।"[१]

"उग्र" जी द्वारा सम्पादित "फाइल और प्रोफाइल" के बहुत-से पत्रों में भी उर्दू-गर्भित शैली के उदाहरण मिलते हैं ।

(४) मिश्रित शैली :

हिन्दी के अनेक पत्र-लेखकों जैसे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, पं०-पद्मसिंह शर्मा, पं० बनारसीदास चतुर्वेदी, आचार्य विनोबा भावे, सेठ-जमनालाल बजाज आदि ने अपने पत्रों में तत्सम, तद्भव, देशज, विदेशी सभी प्रकार के शब्दों को ग्रहण किया है । यहां पं० पद्मसिंह शर्मा द्वारा श्री हरिशंकर शर्मा को लिखे गये पत्र का एक अंश उदाहरण स्वरूप उद्धृत किया जाता है -

"हजूरत (बेताल) ने आतिथ्य का रोना रोया है, यानी तर रोटियां नहीं मिलतीं । इस पर कुछ लिख डालो । अब तक तो सुयश-मधु की ही भूख थी अब रोटियों की भी लग गई । इस दुहरे मतालबे को पब्लिक कैसे पूरा करेगी । इसे प्रकाश में लाइए, जनाब । बेताल का मतलब तो यह है कि उनका जिक्रे खैर किसी-न-किसी रूप में होता रहे, नाम आगे आता रहे ।

हम तालिबे शोहरत हैं हमें नंग से क्या काम ।
बदनाम मीगर होंगे तो क्या नाम न होगा ।"[२]

उपर्युक्त उद्धरण में तत्सम, तद्भव, उर्दू, अंग्रेजी आदि शब्द-रूप प्रयुक्त हैं ।

आचार्य विनोबा जी भी अपने पत्रों में आवश्यकतानुसार सभी भाषाओं के शब्द प्रयुक्त करते हैं । देखें :-

---

१ "चिट्ठी-पत्री भाग-१", (१९६२), पृ० १२ ।

२ "पद्मसिंह शर्मा के पत्र" (१९५६), पृ० ४२ ।

"शोभनीय क्या अशोभनीय क्या इस विषय में कोई दकियानूस विचार मैं नहीं रखता, बल्कि वैज्ञानिक ढंग से सोचना चाहिए, यही मेरा आग्रह है । यह मेरे सब साथी जानते हैं, बल्कि गंदे पोस्टर के खिलाफ मुझे सत्याग्रह करना पड़ा, यह मेरेलिए एक कष्टदायक बात थी । - - - पोस्टर के नियत्रण के साथ खराब सिनेमा, गंदे गाने आदि का भी सेंसरिंग करना ही था । इस तरफ सरकार ध्यान दे रही है, इसकी मुझे खुशी है ।"[1]

(५) व्यास शैली :

जिस शैली में भाषा सरल और सुबोध हो, वाक्यावली में मिश्र एवं संश्लिष्ट प्रयोग न के बराबर हो तथा भाषा में वाच्यार्थ ही मुख्य हो, उस शैली को व्यास शैली या प्रसाद शैली कहते हैं । पत्र-लेखन के लिए यही शैली सर्वाधिक उपयुक्त है, क्योंकि अपनी बात को सीधे, सरल और मुहावरेदार और रोचक ढंग से कह देना ही पत्र-लेखनकला का उद्देश्य है । महात्मा गांधी, पं० पद्मसिंह शर्मा, मुंशी प्रेमचन्द, पं० बनारसीदास चतुर्वेदी, सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला", सुमित्रानन्द पंत, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, हरिवंशराय बच्चन आदि के पत्रों में अधिकतर इसी शैली के दर्शन होते हैं । देखिए कुछ उदाहरण-

-१- महात्मा गांधी के २१ अप्रैल १९३३ के पत्र का अंश -

" प्रचार कार्य की दौड़-धूप बन्द होने से अस्पृश्यता-निवारण कार्य शिथिल हुआ लगता है, यह मुझे प्रिय है । यह कार्य दौड़-धूप का नहीं है । धर्म-कार्य में दौड़-धूप क्या? शांति से जितना होगा वही सच्चा और पक्का होगा ।"[2]

-२- पंत जी का एक महत्वपूर्ण सुझाव-कवि बच्चन जी को -

"हिन्दी शेक्सपीरियन रंगमंच की नींव डालनी चाहिए । और उसी में स्वतंत्र रूप से "मैकबेथ" होना चाहिए । ट्रस्ट का सदस्य मुझे भी बना सकते हैं । जो नियम होंगे मैं निभाऊंगा । - - -"[3]

---

१ "विनोबा के पत्र" (१९६२), पृ० ६७ ।

२ "बड़ों के प्रेरणादायक कुछ पत्र" (१९७०), पृ० १० ।

३ "कवियों में सौम्य संत" (१९६०), पृ० ८६ ।

-३- कविवर बच्चन की जीवन-दृष्टि - डा० जीवन प्रकाश जोशी को लिखे एक पत्र का अंतिम परिच्छेद -

" आशा है आप स्वस्थ हैं । चिन्ताओं से कौन मुक्त हैं ? अपने जीवन से कौन संतुष्ट है । असन्तोष कम-से-कम यह तो कहता है कि मन अभी मरा नहीं ।"[१]

(६) समास शैली :

समासयुक्त पद संघटना को समासवृति या समास शैली कहते हैं । समास-शैली के दो रूप हैं । पहले प्रकार की समास-शैली में शब्द तत्सम-पदावली से सम्पन्न तथा समासयुक्त होते हैं । दूसरे प्रकार की समास-शैली में रचना की दृष्टि से वाक्य मिश्र और संश्लिष्ट अधिक होते हैं और लम्बे-लम्बे तथा बोझिल होते हैं ।

हिन्दी-पत्र साहित्य में इस शैली का प्रयोग लेखकों ने अपना आत्म-वृत्तांत इष्ट-मित्रों को लिख भेजने में, अपने आसपास के परिवेश के वर्णन में, तथा विशेष कृति या व्यक्ति के सम्बन्ध में अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करने में किया है ।

डा० वासुदेव शरण अग्रवाल के एक पत्र के प्रारम्भ में प्रथम प्रकार की समास-शैली प्रयुक्त है । देखिए-

"प्रिय चतुर्वेदी जी, इस समय प्रकृति की शोभा वर्णातीत है । अभी डेढ़ मास प्राचीन अहिच्छत्रा के उत्संग में रहकर लौटा हूं । पट-मंडपों से बना हुआ जो हमारा छोटा-सा आवास था, उसके चारों ओर मधु-लक्ष्मी ने अपना सौंदर्य बिखेर दिया था । आम-मंजरी, वट-किसलय, सहंजन सह स्रात्मक पुष्प-गुच्छक, श्रीवृक्षों की फल-सम्पति, शाल्मली के लाल-लाल फुलों के मधु-कोष, कर्णिकार के पुष्पों की आभा, इस सबसे परिचय पाकर अन्तरात्मा गद्गद हुई ।"[२]

दूसरे प्रकार की शैली का प्रयोग हमें निराला जी के कई पत्रों में प्राप्त होता है । पन्तजी के नाम उनके एक पत्र का अंश प्रस्तुत है-

---

१" बच्चन : पत्रों में" (१९७०), पृ० २८ ।

२"डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्र" (१९७४), पृ० ११२-११३ ।

"आपकी तुलना थोड़ी ही देर के लिये, सीजन फ्लावर के सौंदर्य की तरह, अजान के सूंघने से पहले तक अच्छी लगी । इतनी बड़ी बड़ी तुलना, इतनी शीघ्रता से, ७०।८० मील की स्पीड से चलती हुई गाड़ी को एकाएक रोक देना जिससे हानि की ही शंका है और गाड़ी के हमेशा के लिए रुक जाने की । प्रशंसा की बला जब जब, जहां कहीं आई, मैंने आप के सिर डाल दिया । छिपकर रहने में कितनी शक्ति है, यह शायद मुझसे अधिक बहुत कम लोगों को मिली होगी । आप शक्ति भंग भी कर रहे हैं ।"[१]

(७) मुहावरेदार शैली :

पत्रों में मुहावरेदार शैली अधिक प्रभाव उत्पन्न कर सकती है । अनेक पत्र-लेखकों ने इस शैली का प्रचुरत: प्रयोग किया है । यहां हम कुछ पत्रों के वे अंश प्रस्तुत करते हैं जिनमें मुहावरेदार शैली की छटा दिखाई देती है ।

-१-"- - - प्राचीनकाल में (और शायद अब भी) चौबे लोग अपने यजमानों के पास साल में एक बार चक्कर लगाकर अपना टैक्स वसूल करते थे । इस प्रथा को मैं भी अपने शेष जीवन में चरितार्थ करना चाहता हूं ।"[२]

-२-" - - - पुल्लिंग धातुओं के झुण्ड ने लोहा, कांसा, तांबा, सोना आदि ने बेचारी पीतल को भी मरदानी पोशाक पहनाकर अपने गिरोह में मिला लिया । चांदी गरीब अकेली ही स्त्री-पक्ष में रह गई ।"[३]

-३-" अभी जुम्मा-जुम्मा आठ रोज़ तो मुझे कविता लिखते हुए हैं और आप कहते हैं आपकी पुस्तक की भूमिका लिख दूं ।"[४]

---

१ "निराला की साहित्य-साधना" भाग-३ (१९७६),
संपा० डा० रामविलास शर्मा, पृ० २५३।

२ "पं० बनारसीदास चतुर्वेदी का पत्र श्री प्रभुदयाल मीतल के नाम ।
-"डा० बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र" (१९७१), पृ० २१९ ।

३ "पं० पद्मसिंह शर्मा का पत्र श्री जगन्नाथ चतुर्वेदी के नाम ।
-"पद्मसिंह शर्मा के पत्र" (१९५६), पृ० १७६ ।

४ "डा० हरिवंशराय का पत्र श्री निरंकारदेव सेवक के नाम ।
-"बच्चन के पत्र" (१९७२), पृ० ९ ।

(८) सूक्ति या उद्धरण शैली :

अनेक मनीषियों ने अपने पत्रों में विभिन्न भाषाओं की सूक्तियों अथवा प्रसिद्ध कवि-लेखकों के उद्धरणों का प्रचुर प्रयोग किया है। पत्रों में सूक्तियों या उद्धरणों के उपयोग से कथन में सरसता एवं प्रभावोत्पादकता आ गई है। यही नहीं, उद्धरणों से पत्र-लेखकों की अध्ययनशीलता एवं बहुज्ञता का भी परिचय मिलता है। कुछ उद्धरण वाक्य के अंगभूत बन गये हैं तो कुछ वाक्य से स्वतंत्र किन्तु सम्बद्ध हैं। पं० पद्मसिंह शर्मा तथा राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह के पत्रों में कहीं-कहीं उद्धरणों की प्रचुरता के कारण क्लिष्टता भी आ गयी है। किन्तु ऐसे स्थल अधिक नहीं हैं। पत्रों में विभिन्न भाषाओं की कुछ सूक्तियां भी देखने को मिलती हैं और पत्र-लेखक की स्वनिर्मित सूक्तियां भी। इस प्रकार सूक्ति शैली को दो श्रेणियों में उपविभाजित किया जा सकता है :-

(अ) अन्य कवि-लेखकों की सूक्तियां और

(आ) स्वनिर्मित सूक्तियां।

(अ) अन्य कवि-लेखकों की सूक्तियां :

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, महावीरप्रसाद द्विवेदी, पद्मसिंह शर्मा, बनारसीदास चतुर्वेदी आदि अनेक साहित्यकारों तथा महात्मा गांधी, आचार्य विनोबा भावे आदि महापुरुषों ने अपने पत्रों में संस्कृत, अंग्रेजी, हिन्दी, उर्दू आदि भाषाओं के कवि-लेखकों की सूक्तियां अपने कथन की पुष्टि के लिए उद्धृत की हैं। यहां पहले वाक्य के अंगभूत कुछ उद्धरण प्रस्तुत किये जाते हैं :-

(i) "सरस्वती के लुटेरों को क्या किया जाय, समय का प्रभाव है, "अचौरहार्य" विद्याधन को भी चौर्यमय उपस्थित हो गया। अच्छा लूटने दीजिए। देव-दैत्यों के लूटने पर भी "अद्यापि रत्नाकर एव सिन्धुः।"[१]

(ii) "प्रियवर, आपका ~~कोई~~ कार्ड चक्कर काटता हुआ मुझे यहां मिला। क्या बताऊं - आदमी चाहता है कुछ, और होकर रहता है कुछ।

१" द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र" (१९५८), पृ० १०८।

"ऊधो जब टेढ़े दिन आवें । वही घड़ी टेढ़ी है मेरी -"[१]

अब दो-एक उदाहरण वाक्य से स्वतंत्र किन्तु सम्बद्ध उद्धरणों के लीजिए-

(i) "मैं जानता हूं कि हिन्दी के पाठक अबतक तंग आ चुके होंगे पर क्या किया जाय ? भाई हरिशंकर शर्मा एक उर्दू कविता सुनाया करते थे :-

"बढ़ों के साथ लोग कहां तक वफा करें ?
लेकिन न मौत आये तो बूढ़े भी क्या करें ।।"[२]

(ii) अपनों की प्रसन्नता से जो प्रसन्न होता है, वह धोखा खाता है । इसलिए तुलसीदास ने माप-दण्ड रखा -

" सहज बैर-बिसराय रिपु जो सुनि करहि बखान ।"[३]

(आ) स्वनिर्मित सूक्तियां :

जिस प्रकार अपने वक्तव्य की पुष्टि के लिए प्रसिद्ध कवियों अथवा विचारकों के वाक्य और लोकोक्तियों का पत्रों में प्रयोग किया गया है, उसी प्रकार प्रसंग को रोचक और प्रभावक बनाने के लिए अनेक साहित्यकारों ने स्वनिर्मित सूक्तियों का भी प्रयोग किया है । बच्चन जी के पत्रों में ऐसी सूक्तियों का भण्डार भरा पड़ा है । कुछ नमूने देखिए :-

१-"परिस्थितियां हम कहां बदल पाएंगे, अपने को ही बदलना पड़ेगा ।"[४]

२-"अपना मन्त्र यह है -

अपने मन का हो जाय तो अच्छा ।
न हो तो ज्यादा अच्छा ।"[५]

३- हारी लड़ाई की यह कम उपलब्धि नहीं कि आदमी फिर से लड़ने का हौसला बन्धा लाए ।"[६]

---

१ "राजा साहब के अनूठे पत्र," राजा राधिकारमणप्रसादसिंह अभिनन्दन-ग्रंथ (१९६९), पृ० ३१ ।
~~१ [illegible] (१९६९), पृ० ३१~~ ।
२ "डा० बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र" (१९७१), पृ० २०९ ।
३ "बच्चन पत्रों में" (१९७०), पृ० ८०
४ "बच्चन : पत्रों में" (१९७०), पृ० ६३ । ५- वही, पृ० ८३ ।
६ -वही-, पृ० ८४ ।

(६) मणिप्रवाल शैली :

मणिप्रवाल शैली दो भाषाओं के मिश्रित प्रयोग की शैली है । पत्र-लेखक हिन्दी में पत्र लिखते-लिखते अपने विचार अंग्रेजी या अन्य भाषामें जब व्यक्त करने लगता है, तब मणि-प्रवाल शैली निर्मित हो जाती है । पं० बनारसीदास चतुर्वेदी और कविवर सुमित्रानन्दन पंत के पत्रों में यह विशेषता देनेको मिलती है कि वे हिन्दी में पत्र लिखते-समय अंग्रेजी वाक्यों को सहज ही लिख जाते हैं जैसे-

(i) "बाहर भोजन करने में अत्यन्त खतरा है । निकृष्ट भोजन मिलता है । You must be able to say "No" to any one, When they give you - हानिकारक भोजन ।"[१]

(ii) "व्यक्ति मुक्ति को सम्भव करने के लिए मनुज प्रीति - अर्जित कर तथा लोक साम्य को विश्व ऐक्य के आश्रित रख मानवता को निर्मित करना है । मेन्स इक्वैलिटी शुड बी सबसवियैट टु वर्ल्ड युनिटी-अदर-वाइज़ द इगोइस्टिक प्राइड आफ बींग इक्वल विल बिकम डेस्ट्रक्टिव एंड गो अगेंस्ट वर्ल्ड युनिटी और गुड ।"[२]

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दी पत्र-साहित्य में गद्य की अनेक शैलियों का प्रयोग किया गया है । पत्र-लेखकों ने पत्र लिखते समय यह विचार भी न किया होगा कि हम अमुक गद्य-शैली में पत्र लिख रहे हैं; किन्तु ये गद्य-शैलियाँ पत्र-विधा में बराबर उसी रूप में हमें देखने को मिलती हैं, जिस प्रकार निबन्ध आदि गद्य-विधाओं में प्रयुक्त होती हैं । अनायास रूप में प्रयुक्त होने से इन गद्य-शैलियों में विशेष आकर्षण नज़र आता है ।

१" बाबू वृन्दावनदास को (१३-६-१९६८) ६
-"डा० बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र", पृ० ७१ ।

२" डा० हरिवंशराय बच्चन को (२३-४-१९६४) ।
-"बच्चन के नाम पंत के दो सौ पत्र (१९७१)
पृ० ११८ ।

(घ) हिन्दी पत्र-साहित्य में भावगत शैलियां :

भावाभिव्यंजना की दृष्टि से अभिव्यक्ति की रीतियों को भाव-शैली या भावगत शैली के अन्तर्गत रखा जाता है । भाव का सम्बन्ध एक ओर वर्ण्य-विषय से होता है और दूसरी ओर लेखक की निजी भावनाओं से । अतएव भाव-शैली भी अनेक रूप धारण कर लेती है । आचार्य पंडित सीताराम चतुर्वेदी ने अपनी "लेखनकला" शीर्षक पुस्तक में भाव-शैली के अन्तर्गत विनोदात्मक, आत्म-विश्लेषणात्मक, तर्कात्मक, प्रमाणबहुला, व्यंग्यात्मक, आवेगात्मक, भावात्मक, उपालम्भात्मक, लोमहर्षणात्मक तथा क्रमिक उत्तेजनात्मक आदि अनेक प्रकार की शैलियों की चर्चा की है ।[१]

पत्र व्यक्ति के मनोभावों का दर्पण होता है । किसी विशेष स्थिति, प्रसंग अथवा घटना सम्बन्ध में, किसी के हृदगत भाव जानने हों तो उसके निजीपत्रों का अवलोकन करना चाहिए । इस दृष्टि से ~~मनों में~~ उपर्युक्त भाव-शैलियों में से प्राय: सभी शैलियां हमें हिन्दी के पत्र-साहित्य में उपलब्ध हो जाती हैं । प्राचीन पत्रों में भाव-वैविध्य अधिक नहीं मिलता । ये पत्र प्राय: कुशल लेखकों द्वारा लिखे गये हैं और उनका विशेष सम्बन्ध राजनैतिक गतिविधियों से है । अत: यहां आधुनिक पत्र-साहित्य में उपलब्ध भाव-शैलियों का ही अवलोकन किया गया है । प्रसंगत: प्राचीन पत्रों का संकेत दिया गया है ।

(१) विनोदात्मक शैली :

हंसना-हंसाना मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है । हास्य यानी ह्यूमर को मानवीय जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं में शामिल किया गया है । परन्तु सबसे अच्छा हास्य वही है जो कोमलता और कृपा के भावों से भरा हो ।[२] पत्र-साहित्य में प्राय: ऐसा ही हास्य-विनोद मिलता है ।

१ "लेखनकला" (१९७२), पृ० ७६ ।

२ "The best humour is that which ~~of~~ flovoured through out with Liveliness and Kindness- Thackeray.
(उद्धृत "आधुनिक हिन्दी साहित्य : विश्लेषण और प्रकर्ष" (१९६९), डा० सुरेन्द्र माथुर, पृ० ९०)

जिस प्रकार वार्तालाप में हमें व्यक्तिगत स्तर की हंसी-ठिठौली का आनन्द प्राप्त होता है, उसी प्रकार व्यक्तिगत पत्रों में भी यत्र-तत्र हास्य-विनोद के छींटे मिल जाते हैं । पं० बनारसीदास चतुर्वेदी, पं० बालकृष्ण शर्मा "नवीन", सुमित्रानन्दन पंत आदि के पत्रों में व्यंग्य विनोद की पर्याप्त सामग्री मिलती है । पं० बनारसीदास चतुर्वेदी के नाम लिखे पं० -~~लिखे पं०~~ बालकृष्ण शर्मा "नवीन" के पत्रों में प्राय: सर्वत्र व्यक्तिगत स्तर की हंसी-ठिठौली देखने को मिलती है । उनके ३-१२-१९४९ के पत्र का एक अंश प्रस्तुत है :-

"आपकी मुण्डन-कुशलता का तो मैं वर्षों से प्रशंसक हूं । पर आपने एक भूल की । अस्तूरा चलाने के स्थान पर आपने हथेली में लेकर मेरे इस आदरास्पद शिर पर कुशल क्षौरिक के सदृश अपनी तैल-मर्दन-प्रवीण अंगुलियां चलाना प्रारम्भ कर दीं । परिणाम हुआ यह कि बाल और जम गए । मूंड मुंडने के स्थान पर वह और अधिक घनीभूत कुन्तलधारी हो गया।[1]

महात्मा गांधी भी कभी-कभी पत्रों में अच्छा विनोद कर लेते थे । जानकीदेवी बजाज के नाम एक पत्र में उन्होंने लिखा था :- "समय-समय पर जब जानकीबाई बजाज का नाम अखबारों में देखता हूं तो उससे ऐसा ही लगना चाहिए न कि जमनालाल और हम सब भले ही जेल गये और वहीं रहे ।"[2]

हिन्दी के कुछ पत्र-लेखक अपने पर हंसने की कला में बहुत निपुण हैं । पं० बनारसीदास चतुर्वेदी, पं० पद्मसिंह शर्मा आदि के नाम इस दृष्टि से विशेष उल्लेख्य हैं । चतुर्वेदी जी बाबू वृन्दावनदास को एक पत्र में लिखते हैं :-

"एक बाबा जी को किसी श्रद्धालु ने प्रणाम किया तो बोले, "बच्चा ! आज भोजन तेरे यहां ही रहा ।" सो आप अपनी धर्मशाला में एक कमरा मेरे लिये अभी सुरक्षित रखिये ।"[3]

---

१ "नर्मदा", नवीन-अंक, १९६३, वर्ष-६, अंक-४, पृ० ३ ।
२ "बापू के पत्र बजाज-परिवार के नाम" (१९६६), पृ० ६१-६२ ।
३ "डा० बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र" (१९७१), पृ० १६७ ।

बच्चन जी के नाम लिखे पन्तजी के पत्रों में "विट" और "ह्यूमर" की मात्रा सबसे अधिक है । आत्मस्थ-परस्थ दोनों ही हास्य-प्रकारों का सम्मिश्रण उनके पत्रों में मिलता है । दो-एक उदाहरण देखिए-

(i) "- - - मैं तो केवल डरपोक ही हूं तुम बाहर से अपने को बहादूर दिखाते हो और भीतर से हनूमान चालिसा का पाठ करनेवाले ठहरे ।"[1]

(ii) "- - - जान पड़ता है मेरे मूर्ख सम्बोधन से दु:खी हो । अरे भाई, वह मैंने अर्ध-सत्य लिखा था । पूर्ण सत्य यह है कि तुम मुझे बहुत मानते हो, इसलिए मैं तुम्हारे सिर की मणि ठहरा अर्थात् मूर्ख-शिरोमणि ।"[2]

इन उद्धरणों से स्पष्ट होता है कि साहित्यकारों और महापुरूषों के पत्रों में जो हास्य-विनोद प्राप्त होता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है ।

(२) आत्म-विश्लेषणात्मक शैली :

आत्म-विश्लेषणात्मक शैली में लेखक "स्व" का परीक्षण और विश्लेषण करता हुआ दृष्टिगत होता है । पत्र-साहित्य का मुख्य उद्देश्य आत्म-प्रकाशन और आत्मजीवन की व्याख्या करना है । अत: इसमें लेखक के आत्म-विश्लेषण की प्रवृत्ति की स्पष्ट झलक मिलती है । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला" हरिवंशराय बच्चन आदि के पत्रों में आत्म-विश्लेषणात्मक शैली के दर्शन होते हैं । बाबू भारतेन्दु जी ने आर्थिक संकट की स्थिति में "प्रेमघन" जी के नाम जो पत्र लिखे हैं, उनमें आत्म-विश्लेषणात्मक शैली की सुंदर झांकी मिलती है । ८ अप्रैल १८७८ के पत्र का प्रारम्भिक अंश उदाहरण के तौरपर प्रस्तुत है -

" प्रियवरेषु :

आपका कृपापत्र आया । यह संसार दु:ख सागर है और अपनी अपनी विपत्ति में सब फंसे हैं, पर मैं सोचता हूं कि जितना

---

१ "पंत के दो सौ पत्र : बच्चन के नाम" (१९७९), पृ० ७७

२ -वही-, पृ० १२२ ।

मैं चारों तरफ से दु:ख में जकड़ा हूं, इतना और कोई कम जकड़ा होगा पर क्या करूं खैर चला ही जाना है । बाबूजी का यह तुक बहुत ठीक है "है संसार का यह मजा घन सरिस दुख तड़ित सम सुख मोह छाजन छजा" इन्हीं झंझटों से आजकल पत्र नहीं लिखा ।"[1]

इसी प्रकार आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अपनी मन:-स्थिति का विश्लेषण करते हुए २२-१०-१९२८ को पं० बनारसीदास चतुर्वेदी के नाम पत्र में लिखा था :-

"- - - जैसा कि मैंने आपको लिखा था मैं भी अबतक कानपुर चला गया होता मगर नहीं जा सका ।कारण कुछ दुर्लभ संस्कृत पुस्तकें पंच भारती आदि मैंने हाल में मंगाई थीं । उन्हें दो-चार रोज थोड़ा-थोड़ा देखा । इतने मानसिक श्रम से मेरा दिमाग पकने सा लगा । पुराना उन्निद्ररोग फिर जी उठा । आज कई रोज से नींद नहीं । रात को आंखें बन्द करता हूं तो स्वप्न से देखा करता हूं । तबीयत परेशान है । आराम कर रहा हूं । लीडर तक नहीं पढ़ता । जी होमकर आपको यह पत्र लिख रहा हूं । यह तो मेरी हालत है । इस पर आप मुझसे मेमरिज या आत्मचरित लिखाना चाहते हैं । मैं अब बहुत ही कम मानसिक परिश्रम करने योग्य हूं । मेरे पिछले जीवन से संबंध रखने वाले कोई नोट्स भी मेरे पास नहीं फिर पुरानी बातों को याद करना मेरे लिए बहुत ही कष्टदायक है, क्षमा कीजिए ।"[2]

अब महाकवि निराला द्वारा डा० रामविलास शर्मा के नाम लिखे २-२-१९४३ के पत्र का यह अंश देखिए-

"- - - अपने-आप दिनरात जलन होती है । किसी से अपनी तरफ से प्राय: नहीं मिलता । मिल नहीं सकता । कोई आता है तो थोड़ी-सी-बातचीत । आनेवाला ऊब जाता है । मुझे भी बातचीत अच्छी नहीं लगती । कभी रात-रातभर नींद नहीं आती । तम्बाकू छूटती नहीं । खोपड़ी भन्नाई रहती है ।"[3]

---

१ "प्रेमघन और उनका कृतित्व" (१९७६), परिशिष्ट-२, पृ० १५-१६ ।
२ "द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र" (१९५८), पृ० ७२ ।
३ "निराला की साहित्य-साधना-३" (१९७६), पृ० ३१२ ।

इससे स्पष्ट है कि साहित्यकों के पत्रों में आत्म-विश्लेषणात्मक शैली के अनेक सुन्दर उदाहरण भरे पड़े हैं । प्राचीन पत्रों में छत्रसाल द्वारा अपने पुत्र जगतराज को लिखे गये पत्रों में भी कहीं-कहीं यह शैली झलकती है ।

(३) आत्म-चिन्तन शैली :

आत्म चिन्तन शैली में व्यक्ति अपने ही विचार-व्यवहार और योजना पर विचार करता है । पत्र-साहित्य में यह शैली बड़ी सरलता से उपलब्ध हो जाती है । चिन्तनशील लेखकों के पत्रों में यह शैली विशेषरूप से दृष्टिगोचर होती है । "एक भारतीय आत्मा" के रामनाथ "सुमन" के नाम प्रेषित एक पत्र का निम्न अंश द्रष्टव्य है -

"- - - आपकी थोड़ी-सी पंक्तियों ने आकर तो मेरे उपेक्षा के अधिकार ही को चुनौती दे दी है । उपेक्षा मेरी सेहत है, वह मेरी संकट की साथिन है, सुख की सलाहकार । किन्तु जब कोई द्वार खटखटा बैठता है तब मेरी उपेक्षा में और मुझ में गृह-कलह उपस्थित हो जाता है[१]।

श्री सियाराम शरण गुप्त के पत्रों में भी हमें कहीं-कहीं आत्म-चिन्तन शैली के दर्शन हो जाते हैं । पं० बनारसीदास चतुर्वेदी को एक पत्र में उन्होंने लिखा है-

" पाथेय मैंने अपने ही लिए लिखा था । उसके बिना कदाचित् मैं जी नहीं सकता था । मेरे इस बन-भोजन में आप भी निकट आ बैठे , इससे उसका महत्व दुगुना बढ़ गया है । अपनी इस निर्जनता में मैंने सब कुछ पा लिया । जानकी-जीवन को धन्यवाद देने के सिवा मैं कर ही क्या सकता हूं ।"[२]

---

१ "छायावाद युगीन स्मृतियां" (१९७५) ,
रामनाथ सुमन, पृ० ७६ से उद्धृत ।

२ "सियारामशरण गुप्त का गद्य-साहित्य (१९७०),
सुमित्रा वर्मा, पृ० १०० से उद्धृत ।

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्रों में भी आत्मचिन्तन की प्रवृत्ति पर्याप्त मात्रा में पायी जाती है । उन्होंने पं० बनारसीदास चतुर्वेदी के नाम जो पत्र लिखे हैं, उनमें उन्होंने अपनी आशा-आकांक्षाओं को सुन्दर शब्दों में व्यक्त किया है । जैसे पत्रकार कला की अपने जीवन से घनिष्ठता बतलाते हुए वे लिखते हैं:

"पत्रकार कला - यह तो मेरा ही स्वप्न है । ईश्वर ने मुझे पत्रकार ही बनाकर भेजा था । द्विवेदी जी की "सरस्वती" जब मैं देखता तो कहता कि इस तरह की कितनी पत्रिकाएं सम्पादित कर सकता हूं । मेरा उत्साह किसी समय असीम था ।"[१]

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि पत्र-साहित्य में आत्मचिन्तन शैली के अनेक उत्कृष्ट उदाहरण प्राप्त होते हैं ।

(४) तर्क प्रधान या विवेचनात्मक शैली :

पत्र-साहित्य में इस प्रकार शैली हमें वहां मिलती है जहां पत्र-लेखक किसी गम्भीर विषय पर अपने विचार व्यक्त करता है । प्रतिष्ठित साहित्यकार जब किसी शोधार्थी, साहित्य के जिज्ञासु, किसी पत्रिका के सम्पादक आदि के द्वारा पूछे गये प्रश्नों के उत्तर में पत्र लिख भेजता है तो उसमें विशेषत: तर्कप्रधान या विवेचनात्मक शैली का ही प्रयोग मिलता है । विभिन्न आलोचना-ग्रंथों एवं शोध-प्रबन्धों के परिशिष्टों आदि में जो पत्र प्रकाशित किये जाते हैं, उनमें इसी शैली की झलक मिल जाती है । इस दृष्टि से डा० प्रभाकर माचवे द्वारा सम्पादित "जैनेन्द्र के विचार", डा० पद्मसिंह शर्मा "कमलेश" लिखित "हिन्दी गद्य-काव्य, डा०-रामेश्वरलाल खण्डेलवाल लिखित "जयशंकर प्रसाद : वस्तु और कला", डा०-शशिभूषण सिंहल लिखित "हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियां", डा० महावीर मल लोढ़ा लिखित "हिन्दी उपन्यासों का शास्त्रीय विवेचन", डा० रवेलचन्द्र आनंद लिखित "महापंडित राहुल सांकृत्यायन का सर्जनात्मक साहित्य",

---

१" डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्र" (१९७४) पृ० १४१ ।

डा० रमाकान्त श्रीवास्तव लिखित "व्यक्तिवादी एवं नियतिवादी चेतना के सन्दर्भ में उपन्यासकार भगवतीचरण वर्मा" आदि ग्रंथों के परिशिष्टों में प्रकाशित पत्र अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं । इन पत्रों में लेखकों ने साहित्य की विविध विधाओं, कलाओं तथा दृष्टियों पर अपने मंतव्य प्रकट किये हैं । यहां कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं ।

श्री जैनेन्द्रकुमार ने अपने १-८-१९३५ के पत्र में जीवन और कला के सम्बन्ध में डा० माचवे को लिखा है :

"- - - जीवन एक अभिलाषा है । जब कला के सम्बन्ध में जीवन शब्द का उपयोग करता हूं तब उसे आप उस चिर-अभिलाषा की परिभाषा ही समझें । उस अर्थ में समझने से जीवन और कला का विरोध, या Parallelism उड़ जाता है ।"[1]

डा० रघुवीरसिंह गद्य-काव्य के तात्त्विक पक्ष का उद्घाटन करते हुए लिखते हैं-" - - - - गद्य-काव्य की परिभाषा करना कठिन है । वे सारे काव्यमय भाव छन्दोबद्ध नहीं और जिनमें काव्य या संगीत की गति और लय नहीं हो उन्हें गद्यकाव्य की परिभाषा में लिया जा सकता है ।"[2]

"प्रसाद" साहित्य की दार्शनिक पीठिका का विवेचन करते हुए आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने लिखा है:- "प्रसाद-साहित्य की दार्शनिक पीठिका निश्चय ही प्रत्यभिज्ञा-दर्शन से निर्मित है, परन्तु साधनरूप में "प्रसाद" ने प्रेम, करुणा और शक्ति के तत्वों को भी सन्निविष्ट किया है । उनका मार्ग व्यक्ति से सीधे "अहंता" पर पहुंचने का नहीं है - वरन् व्यक्ति से समष्टि (इदम्)को पार करते हुए "अहं" पर पहुंचने का है ।"[3]

व्यक्तिवादी एवं नियतिवादी चेतना के सम्बन्ध में श्रीभगवतीचरण वर्मा ने अपने विचार इन शब्दों में लिख भेजे हैं:"मेरा व्यक्तिवाद-

---

१ "कुछ पत्रों के अंश ;"जैनेन्द्र के विचार"(द्वि०सं० १९७७), पृ० १८१ ।
२ "कुछ पत्र : हिन्दी गद्य-काव्य"(१९५८), परिशिष्ट-२, पृ० ३१२-१३ ।
३ जयशंकरप्रसाद : वस्तु और कला"(१९६८), परिशिष्ट-६, पृ० ४९९ ।

जीवन में मेरे कटु अनुभवों की उपज है । अपने अन्दरवाले व्यक्ति को दबाकर अथवा फुसलाकर मैं कुछ प्राप्त कर सकता हूं । मैं तो बड़ा विवश हूं - अपनी प्रवृत्तियों और बहिर परिस्थितियों से बन्धा हुआ । जो नियंता है । वही एक सूक्ष्म संज्ञा है । मेरा व्यक्तिवाद विवशता की इसी अनुभूति की उपज है ।"[1]

इससे स्पष्ट होता है कि साहित्यकारों के इन पत्रों द्वारा उनके दृष्टिकोण एवं साहित्य के सिद्धान्त-पक्ष पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है ।

(५) प्रमाण-बहुला शैली :

प्रमाण-बहुला शैली उद्धरण शैली का ही एक रूप है, किन्तु उद्धरण शैली में उद्धरणों की बहुलता नहीं होती, जब कि प्रमाण-बहुला शैली में उद्धरणों की प्रवृत्ति अत्यन्त तीव्र हो उठती है । लेखक अपने कथन की पुष्टि के लिए अथवा भाव के समर्थन के लिए एक साथ कई उद्धरण प्रस्तुत कर देता है । हिन्दी पत्र-लेखकों में पं० पद्मसिंह शर्मा का नाम इस शैली की चर्चा में विशेष स्मरणीय है । पं० शर्मा जी ने अपने पत्रों में एक भाव की पुष्टि के लिए अनेक भाषाओं के उद्धरण प्रस्तुत किये हैं ।उदाहरणार्थ-

आ० द्विवेदी के पत्र से यह जानकर कि उनके कोई सन्तति नहीं है, शर्माजी ने उनको मानस-सन्तति की महत्ता का स्मरण दिलाते हुए लिखा-

"जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धा: कवीश्वरा: ।
नास्तियेषां यश: कायं जरामरणजं भयम् ।।"

जौक ने भी कहा है -

"रहता सुख नसें नाम कयामत तलक है जौक ।
औलाद से तो है यही दो पुश्त चार पुश्त ।"[2]

उनके किसी-किसी पत्र में तो ऐसे चार-पांच संस्कृत के श्लोक[3] और उर्दू के शेर[4] उद्धृत किये गये हैं ।

१ "व्यक्तिवादी एवं नियतिवादी चेतन्त के सन्दर्भ में उपन्यासकार - भगवती चरण वर्मा" (१९७७), पृ० ३२३ ।
२ "द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र" (१९५८), पृ० ९४ ।
३ "देखिए: वही-, पृ० ११६-११७ ।
४ "देखिए: "पद्मसिंह शर्मा के पत्र" (१९५६), पृ० ५९-६० ।

प्रमाण-बहुला शैली की दृष्टि से पं० पद्मसिंह शर्मा के अतिरिक्त राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, पं० बनारसीदास चतुर्वेदी, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल आदि के पत्र भी द्रष्टव्य हैं । डा० गोपाल-प्रसाद बंशी के नाम लिखे गये राजा साहब के कुछ पत्र "रसवंती" में भी प्रकट हुए हैं । इनमें शायद ही कोई ऐसा पत्र होगा जिसमें उर्दू का शेर या उसकी पंक्ति उद्धृत न की गयी हो । एक पत्र तो पूरा उद्धरणों में ही है । देखिए :

"प्रियवर ,

'याद में तेरी जहां को भूलता हूं मैं ,
भूलने वाले । कभी तुमको भी याद आता हूं मैं ?

अब उस पार की पुकार का इन्तजार है । फिर भी -
'है अरमान बाकी ।'

क्या यह सच है कि "दर्द का हद से गुजरना है दवा हो जाना"
- है ऐसा ?

बस, 'जी ढूंढ़ता है फिर वही फुरसत के रात दिन-
बैठे रहें तसव्वुरे जानां किये हुए ।'[1]

सम्भवत: हिन्दी पत्र-साहित्य में यह पत्र प्रमाण-बहुला शैली की दृष्टि से 'एकमवाद्वितीय' है ।

पं० बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्रों[2] में भी एक साथ अंग्रेजी, उर्दू आदि भाषाओं के अनेक उद्धरण उपलब्ध होते हैं । डा० वासुदेवशरण-अग्रवाल ने भी किसी-किसी पत्र[3] में अनेक वेद-मंत्र उद्धृत कर दिये हैं ।

इस प्रकार, यह शैली पत्र-साहित्य में विशिष्ट स्थान रखती है ।

---

१ "रसवन्ती", मई १९६५, पृ० ३८ ।
२ देखिए : "डा० बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र" (१९७०), पृ० १७३-७४ ।
३ देखिए : डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्र" (१९७४) ,
पृ० १४२-१४३ ।

(६) व्यंग्यात्मक शैली :

किसी भी रचना में अर्थ-विस्तार, अर्थ-गाम्भीर्य और अर्थ-सिद्धि की दृष्टि से व्यंग्य का बड़ा महत्व है ।

व्यंग्य का मूल असंगति में है । एक विसंगति जब पत्र-लेखक को खिजाती है, उसके मूल्य-बोध को चोट करती है तब वह अपने पत्रों में उस पर व्यंग्य किये बिना नहीं रह सकता । वह अपने इष्ट-मित्रों के नाम लिखे पत्रों में किसी विशेष विसंगति पर अपनी तीव्र प्रतिक्रिया व्यक्त करता है । उसकी भाषा में आक्रोश होता है और कभी हल्का-फुलकापन भी । पाठक को उसकी व्यंग्य शैली आनन्द प्रदान करती है और समस्या-विशेष पर विचार करने के लिए विवश भी करती है । श्री अजात शत्रु के अनुसार 'व्यंग्य का केन्द्रीय भाव तिलमिलाहट उत्पन्न करना है ।'[१]

हास्य और व्यंग्य के बीच एक सूक्ष्म भेद रेखा है । यद्यपि व्यंग्य का प्रयत्न हंसाना नहीं होता, तथापि हंसते-हंसते विसंगतियों को व्यक्त करना उसका अभिप्राय हो सकता है । इसी कारण इस प्रकार के व्यंग्य को 'हास्य-व्यंग्य' के नाम से पुकारा जाता है ।[२]

पत्र-साहित्य में हमें जिस व्यंग्यात्मक शैली के दर्शन होते हैं, उसमें लेखक व्यंग्यकार के रूप प्रकट नहीं हुआ है । दूसरे शब्दों में यहां व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग लेखक ने जानबूझकर नहीं किया है, वरन् उससे प्रसंगोपात हो गया है । हां, उन पत्रों की बात अलग है जो प्रकाशन के उद्देश्य से लिखे गये हैं । जैसे 'दुबेजी चिट्ठियां', 'भ्रमरानन्द के पत्र', परसाई जी के 'और अंत में' शीर्षक से प्रकाशित पत्र आदि ।

समाज की कमजोरियों, दुर्बलताओं, करनी और कथनी के अंतरों पर प्रहार करने की प्रवृत्ति पं० पद्मसिंह शर्मा के पत्रों में विशेष

अंतरों पर सीधे प्रहार करने की प्रवृत्ति पं० पद्मसिंह शर्मा के पत्रों में विशेष

---

१ 'व्यंग्य की समीक्षा' (लेख), 'शब्द', अप्रैल १९७५ ।
२ 'व्यंग्य के मूलभूत प्रश्न' (१९७६), शेरजंग गर्ग, पृ० ३० ।

दिखाई देती है । वे आर्यसमाज में आस्था रखते थे, परन्तु आर्यसमाज के महात्माओं की लीला देखकर वे उससे अलग हो गये और आचार्य द्विवेदी के नाम लिखे अपने पत्रों में उन महात्माओं की लीला की कटु आलोचना भी की ।[1] इसी प्रकार शर्माजी को ढोंगी लीडरों से खूब चिढ़ थी । पं० बनारसीदास चतुर्वेदी को लिखे एक पत्र में उन्होंने ढोंगी लीडरों पर व्यंग्य करते हुए कहा है :-

"लीडरी पेशा राजनीतिक जन्तुओं के सम्बन्ध में जिस परिणाम पर आप पहुंचे हैं, मैं उससे भी कुछ आगे आ गया हूं । लीडर-लीला लिखने का बहुत दिनों से विचार कर रहा हूं । लिखी गई तो पढ़ने लायक चीज़ होगी ।"[2]

पं० जन्ननाथ प्रसाद चतुर्वेदी के नाम प्रेषित अपने ८-८-१९१६ के पत्र में हिन्दी लिंग-निर्णय के सम्बन्ध में लखनऊवालों की प्रगतिशीलता पर व्यंग्य करते हुए वे लिखते हैं :

"लखनऊवालों की दुनिया बेशक दूसरी है । वह तो माला को भी पुल्लिंग के डोरे में गूंथते हैं ।"[3]

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने तिवारी जी को लिखे एक पत्र में सरकारी तंत्र की जड़ता पर बड़ा तीव्र व्यंग्य किया है । वे अपने गांव में खुले दवाखाने के लिए नये वैद्य को भेजने के लिए चैयरमैन को कई प्रशंसात्मक पत्र भेजते रहे, फिर भी वहां से कोई उत्तर नहीं मिला । तब वे लिखते हैं:-

---

१ (क) "विचित्र लीला है ।
हमें तो ऐसी ऐसी बातें देखकर इस समाज से घृणा सी हो गई है ।
-"द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र",
पृ० १५७ ।

(ख) "इसमें सन्देह नहीं कि कुछ महात्माओं की विचित्र लीला से आर्य समाज बदनाम और असर्वप्रिय हो जाता है,
दैवगति ।" - वही, पृ० १६६ ।

२ "पद्मसिंह शर्मा के पत्र" (१९५६), पृ० ५९ ।

३ -वही-, पृ० १७५ ।

" क्या करूं, कुछ समझ में नहीं आता । सुनता हूं, खुशामद जरूर कामयाब होती है, वह हजम नहीं होती -

"केश पचैं, मक्खी पचैं, हलाहल पचि जाय
जाहि खुशामद पचति है, तासों नाहिं उपाय ।

मगर इन लोगों को खुशामद भी पच जाती है ।"[1] हंसते-हंसते व्यंग्य करने की कला पंत जी खूब जानते हैं । "बच्चन के नाम पंत के दो सौ पत्र" शीर्षक पुस्तक में व्यंग्यात्मक शैली के अनेक अनूठे उदाहरण मिलते हैं । एक पत्र में कुश्ती-तमाशों एवं दिखावटी लड़ाइयों पर विनोदपूर्ण ढंग से व्यंग्य करते हुए वे लिखते हैं :-

"तुम्हारी मेरी कुश्ती भी दशहरे में अल्फ्रेड पार्क में हो जायेगी । ५)-५) टिकट रहेगा । एक बार लड़ने का स्वांग कर तुम गिर पड़ना, एक बार मैं । रुपये आधे-आधे बांट लेंगे ।"[2]

एक अन्य पत्र में वर्तमान युग की विषमता का व्यंग्यात्मक चित्र इन शब्दों में अंकित किया गया है -

"यहां दो-तीन दिन खूब पानी बरसा—धरती अब तृप्त है - पर सूना है अब बोने को बीज नहीं है । कुछ तो लोग निराशा में खा गए हैं - कुछ सरकारी अफसरों के पेट में गए !!!"[3]

बच्चन जी के पत्रों में भी कहीं-कहीं व्यंग्यात्मक शैली की सुन्दर छटा देखने को मिल जाती है । कमेटियों के पक्षपातपूर्ण निर्णयों पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए उन्होंने अपने एक पत्र में लिखा है-

"निर्णय के लिए आभारी हूं -

एक ने कही, दूसरे ने मानी ,
कहै कबीर, दोनों ज्ञानी ।"[4]

इस प्रकार हिन्दी पत्र-साहित्य में हमें व्यंग्यात्मक शैली के अनेक सरस और सुन्दर नमूने उपलब्ध होते हैं ।

१" द्विवेदी-पत्रावली" (१९५४), पृ० २१७-२१८ ।
२" बच्चन के नाम पन्त के दो सौ पत्र" (१९७१), पृ० २३६ ।
३" -वही-, पृ० २४१ ।
४" बच्चन : पत्रों में" (१९७०), पृ० ८१ ।

(७) आवेग शैली :

जहां उमड़ते हुए भावों के कारण अभिव्यक्ति में तीव्रता आ जाती है, वहां हमें आवेग शैली के प्रमाण मिलते हैं । पत्र-साहित्य में इस प्रकार की शैली विशेषतया हमें प्रेम-पत्रों में देखने को मिलती है जहां दो भावुक हृदय उन्मुक्त होकर उछलने लगते हैं । अंग्रेजी साहित्य में प्रेम-पत्रों के अनेक उत्कृष्ट संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं । फैनी ब्राउन को लिखे हुए कवि कीट्स के प्रेम-पत्र आवेग शैली के अद्वितीय उदाहरण हैं । इसी प्रकार के आवेगपूर्ण प्रेम-पत्र फ्रांस के विश्वप्रसिद्ध उपन्यासकार विक्टर ह्यूगो की अभिनेत्री जूलियट ड्रूक ने लिखे थे जिन्हें फ्रांस सरकार ने २,५५, ४१० रुपये में खरीदकर सुरक्षित रखे हैं । इन पत्रों को फ्रांसीस साहित्य की अमूल्य निधि कहा गया है ।[१]

मानव-मन विविध भावों का कोश है । इसमें सत् और असत् भाव सदैव निहित रहते हैं । प्रेम सत् भावों में से ही एक प्रमुख भाव है । यह भाव हृदय अथवा मन को अनन्त तृप्ति प्रदान करने वाला है ।[२] प्रेम की भूख सार्वभौम है । वह ऐसी शक्ति है, जो मनुष्य को व्याकुलता और विक्षिप्तता से बचाती है और उसे स्वस्थ रखती है ।[३]

श्री विजयचन्द द्वारा सम्पादित "प्रसिद्ध व्यक्तियों के प्रेम-पत्र" शीर्षक पुस्तक में विश्व-विख्यात कवियों, लेखकों, दार्शनिकों, राजनीतिज्ञों वैज्ञानिकों, उद्योगपतियों आदि के विविध प्रकार के भावपूर्ण प्रेम-पत्र संकलित हैं । इस पुस्तक में हिन्दी के कुछ साहित्यकारों और राजनीतिज्ञों के पत्र भी दिये गये हैं ।

उक्त पत्र-संग्रह में जिन हिन्दी पत्र-लेखकों के पत्र संकलित हैं, उनमें उपन्यास-सम्राट् मुंशी प्रेमचन्द का पत्र शिवरानी के नाम, नाटककार विष्णु प्रभाकर का पत्र पत्नी सुशीला के नाम, कवि नीरज का पत्र "नी"

---

१ "सरिता", मार्च १९६०, पृ० ५८ ।

२ "डा० देशराज सिंह भाटी : "बिहारी और उनका साहित्य" (१९७१), पृ० १६८ ।

३ "डा० शांति भारद्वाज : हिन्दी उपन्यास प्रेम और जीवन" (१९६९), पृ० २६ ।

के नाम आदि पत्र उल्लेखनीय हैं । प्रेमचन्द जी के पत्र का एक प्रारंभिक अंश इस प्रकार है -

"प्रियरानी, मैं तुम्हें छोड़ कर काशी आया, मगर यहां तुम्हारे बिना सूना-सूना लग रहा है । क्या कहूं ? - - - तुम तो अपनी बहन के साथ वहां खुश होंगी, मगर मैं यहां परेशान हूं, जैसे एक घोंसले में दो पक्षी रह रहे हों और उनमें से एक के न रहने पर दूसरा परेशान हो । तुम्हारा यही न्याय है कि तुम वहां मौज करो और मैं तुम्हारे नाम की माला फेरूं ? - - - - "[1]

श्री विष्णु प्रभाकर के ७-६-१९६८ को सुशीलाजी के नाम लिखे पत्र का यह अंश भी कितना भावपूर्ण है !

" मेरी रानी ! मैं चाहता हूं कि तुम्हें बिलकुल भूल जाऊं । समझूं तुम बहुत बदसूरत, फूहड़ और शरारती लड़की हो । मेरा तुम्हारा कोई सम्बन्ध नहीं । लेकिन विद्रोह तो और भी आसक्ति पैदा करता है । तब क्या करूं ? मुझे डर लगता है । मुझे उबार लो, नहीं तो पतन के उस खड्डे में जा गिरूंगा, जहां दुनिया को मेरी किरच ढूंढ़ी न मिलेगी ।"[2]

राहुल सांस्कृत्यायन द्वारा अपनी पत्नी कमला सांकृत्यायन को लिखे गये पत्र भी बड़े भावपूर्ण एवं मधुर हैं । ये पत्र डा० ब्रह्मानन्द द्वारा सम्पादित "राहुल सांकृत्यायन : व्यक्तित्व और कृतित्व" नामक पुस्तक में परिशिष्ट में दिये गये हैं । उदाहरण के लिए २०-२-१९५८ को देहरादून से लिखे पत्र के प्रारम्भिक कुछ वाक्य द्रष्टव्य हैं -

" प्राणों से भी प्यारी ,

तुम्हारा कल का पत्र मिला । अब रोज पत्र न मिलने पर विकलता रहती है । रात को घंटों ध्यान तुम्हारी ओर रहता है , नींद नहीं आती । - - - - "[3]

---

१ "प्रसिद्ध व्यक्तियों के प्रेम-पत्र" (१९६१), पृ० १४२ ।

२ " -वही- . पृ० ३५४ ।

३ " राहुलसांकृत्यायन : व्यक्ति और कृतित्व" (१९७१), पृ० २३९ ।

इधर भावात्मक शैली में लिखे गये पत्रों का एक और संग्रह देखने में आया है- "दस्तावेज़ ।" यह सुप्रसिद्ध उपन्यास-लेखिका और कवयित्री अमृता प्रीतम द्वारा इमरोज़ को लिखे गये पत्रों का मोहक एवं सुवासित गुच्छा है । अमृता प्रीतम एक कुशल पत्र-लेखिका भी हैं । उन्होंने कितने ही सुन्दर पत्र अपने मित्रों और प्रेमियों को लिखे हैं और पाये हैं । अपनी आत्म-कथा "रसीदी-टिकट" में एक स्थान पर उन्होंने अपनी पत्र-निधि की चर्चा भी की है ।[1] "दस्तावेज़" में अमृता जी की भावनाओं के अनेक चित्र अंकित हैं । यथा-

"हर कदम पर, इस विश्वास तोड़ने वाली दुनिया में, तुम, तुम्हारा अस्तित्व और तुम्हारे खत, ज़िन्दगी की रहमत है । नहीं तो दुनिया के ज़ुल्म की कहानी कितनी लम्बी होती, यह मुझे भी मालूम है, तुम्हें भी ।"[2]

इस प्रकार हम देखते हैं कि आवेग शैली के उत्तम उदाहरण हमें प्रणय-पत्रों में सहज उपलब्ध हो जाते हैं । इन पत्रों में भावावेग का जितना सुन्दर, सजीव एवं सरस चित्र उभरता है, उतना अन्य पत्रों में नहीं अत: पत्र-साहित्य में उपलब्ध भाव-शैलियों में इस शैली का अपना विशिष्ट स्थान है । डा० शंकरदयाल चौकिष्ठा ने बहुत उपयुक्त कहा है -

"शैलियों की दृष्टि से प्रेमी के पत्रों में जो आत्म-तन्मयता एवं हृदय का एकीकरण होता है, वह इतना सजीव, सुन्दर एवं सप्राण होता है कि उसकी तुलना में प्रखर मेधा और अनुभवी लेखनी भी ठिठक जाती है । ऐसे पत्र मिश्री से मधुर तथा मदिरा से अधिक मादक होते हैं ।"[3]

(८) अन्तर्द्वन्द्व-व्यंजक शैली :

पत्रों में हमें केवल हास-परिहास, राग-विराग, आत्म-विश्लेषण तथा आत्मचिन्तन आदि भावों का चित्रण ही नहीं मिलता, वरन्

---

१ "रसीदी टिकट" (१९७८), पृ० ७० ।

२ "दस्तावेज़ (१९७८), पृ० ५९ ।

३ "द्विवेदी-युग की हिन्दी गद्य-शैलियों का अध्ययन" (१९६५), पृ० ४३२-४३३ ।

पत्र-लेखक के अन्तर्द्वन्द्व की झांकी भी होती है । अनेक लेखकों ने अपने घनिष्ठ मित्रों को लिखे पत्रों में अपने अन्तर्द्वन्द्व का मार्मिक चित्र उपस्थित किया है ।

अन्तर्द्वन्द्व की व्यंजना की दृष्टि से महाप्राण "निराला" के पत्र विशेष उल्लेखनीय हैं । आचार्य शिवपूजन सहाय के नाम लिखे १-१०-१९२७ के पत्र का निम्नांकित अंश देखिए :

"आप अपनी योग्यता के लिए रोते हैं । आपके आंसू पोछूं, वह शक्ति यहां नहीं । मैं तो जो कुछ देखता हूं, बहुत है मेरे लिये- पूछे हु मोंहि रहौं कहैं मैं पूछत सकुचाऊं । कोई कहता है, हाल, बेताब-ए-दिल होश में आलू (आलूं) तो कहूं । परन्तु यहां तो होश आने पर भी भूली हुई बातों की याद नहीं आती- जो कुछ जानता था, वह भी गया[१] ।"

हिन्दी की प्रसिद्ध उपन्यास-लेखिका मन्नू भण्डारी के कहानीकार अमरकान्त के नाम लिखे कुछ पत्र प्रकट हुए हैं । इनमें से १-१-१९५९ के पत्र में अन्तर्द्वन्द्व-व्यंजना की अच्छी झलक मिलती है । पत्र का एक अंश इस प्रकार है :

"इस बीमारी में आपकी "ज़िन्दगी और जोंक" कहानी रोज ही याद की है । मुंह से मैं चिल्लाया करती थी कि" हे भगवान इस सड़ी ज़िन्दगी से मौत आ जाए तो अच्छा" पर स्वस्थ होने के लिये हर उपचार मैंने बड़ी तत्परता और लगन से किया । सच आदमी चाहे सड़े गले पर मर नहीं सकता, मरना चाहता नहीं ।"[२]

आधुनिक लेखकों में मुक्तिबोध के पत्रों में भी अन्तर्द्वन्द्व का मर्मस्पर्शी चित्र देखने को मिलता है । नेमिचन्द्र जैन को लिखे एक पत्र का निम्न अंश देखिए -

"किन्तु आज सहसा मैं अपनी सही जगह आ गया था, क्षण-भर के लिए ही सही, मैं अपने से चेतन हो उठा । मेरी ज्ञान-तृष्णा, सौन्दर्य-शक्ति, मुक्त हृदयदान तथा स्वानुकूल कर्मण्य शक्ति का मानो मुझे,

१ निराला की साहित्य-साधना-३, पृ० ३३१
२ अमरकान्त (१९७७), सपा० रवीन्द्र कालिया, पृ० ३३३ से उद्धृत ।

क्षण-भर के लिए ही सही, बोध हो गया जिसकी आग अभी-अभी राख हो जाएगी । जिस जिन्दगी को जीने का मुझे आदेश मिला है, वह कुछ दूसरी ही थी । यह नहीं । परन्तु फिर भी, यही चाहता हूं कि मैं इस दलदल को भी पार कर जाऊं । सचमुच मुझे जिन्दगी की तब्दली की बहुत बड़ी जरूरत है ।"[१]

इन पत्रों में हमारे शीर्षस्थ साहित्यकारों के जीवन-संघर्ष की मार्मिक कहानी अंकित है ।

(६) उपदेशात्मक शैली :

पत्र-साहित्य में इस शैली को हम प्राय: बड़े व्यक्तियों द्वारा छोटे व्यक्तियों को लिखे गये पत्रों में देखते हैं । महात्मा गांधी तथा आचार्य विनोबा जी के बजाज परिवार के नाम लिखे पत्रों में यत्र-तत्र इसी शैली के दर्शन होते हैं । पं० वियोगी हरि द्वारा सम्पादित "बड़ों के प्रेरणादायक कुछ पत्र" शीर्षक लघु संग्रह में संकलित पत्रों में भी प्राय: यही शैली हमें दिखाई देती है । स्वामी सत्यभक्त के "अनमोल पत्र" शीर्षक संग्रह के पत्रों में भी यत्र-तत्र उपदेशवचन बिखरे हुए हैं । स्वामी गोपालदास के पत्रों का मुख्य स्वर भी उपदेश-प्रधान है । भक्तवर जयदयालु गोयन्दका जी की "परमार्थ पत्रावली" में भी उपदेश-प्रधान पत्रों का संग्रह है । इस प्रकार साहित्येतर क्षेत्रों की महान् विभूतियों के पत्र हमें जीवन के लिए अमूल्य प्रेरणा एवं उपदेश देते हैं ।

साहित्यकारों के पत्रों में उपदेश का जो स्वर गूंजित है, वह अलग स्तर का है । कविवर पन्त जब बच्चन जी को "तुम आजकल घर में सब से चिढ़े रहते हो, यह ठीक नहीं है- सबसे मधुर व्यवहार रखो, स्वयं सहकर भी -"[२] यह मधुर व्यवहार का जो उपदेश देते हैं, वह मित्रवत् हैं ।

इसी प्रकार आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने मैथिलीशरण गुप्त के नाम पत्रों में काव्य-रचना, छन्द-प्रयोग आदि के सम्बन्ध में जो उपदेशात्मक वाक्य लिखे हैं, वे एक साहित्यकार-निर्माता के उपदेश-सूत्र हैं ।

---

१ "मुक्तिबोध के कुछ पत्र", नेमिचन्द्र जैन, "आलोचना", जुलाई-सितम्बर, १९६८, पृ० ४१ ।

२ "बच्चन के नाम पन्त के दो सौ पत्र" (१९७१), पृ० ५६ ।

इस प्रकार पत्र-साहित्य में विविध प्रकार की उपदेश शैलियां उपलब्ध होती हैं ।

(१०) दृष्टान्त शैली :

हिन्दी के कुछ पत्र-लेखकों ने अपने पत्रों के बीच-बीच में सुन्दर दृष्टान्त और रोचक प्रसंगों की चर्चा भी की है । इन दृष्टान्तों से विषय-वर्णन में सरसता आ गयी है और विषय की सार्थकता बढ़ गयी है ।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने पं० जनार्दन झा "जनसीदन" को राजा कमलानन्द सिंह और अपने पत्र-व्यवहार के सम्बन्ध में फ्रांस के दो कवियों के पत्र-व्यवहार का दृष्टान्त देते हुए लिखा है -

"फ्रांस में दो कवि हो गए हैं । वे ११ वर्ष तक एक दूसरे से नहीं मिले । परन्तु पत्र द्वारा ही उनका प्रगाढ़ स्नेह हो गया । यहां तक कि दोनों ने मिलकर पुस्तकें तक लिखीं । हमने समझा हमारा और राजा साहब का इतना पत्र-व्यवहार हो चुका है कि हम उनको उस कविता के विषय में लिख सकते हैं ।"[१]

पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने भी अपने पत्रों में कई स्थान पर दृष्टान्त शैली का प्रयोग किया है । उदाहरण के लिए विष्णु प्रभाकर के नाम लिखे उनके १४-१-१९४५ के पत्र का प्रारम्भिक अंश देखा जा सकता है जिसमें उन्होंने यूरोप के हैनरिक वर्जिलैण्ड नामक कवि द्वारा रास्ते में चलते समय वृक्षों के बीज इधर-उधर डालते जाने की रोचक घटना का वर्णन किया है ।[२]

आचार्य विनोबा भावे के पत्रों में भी हमें अनेक सुन्दर, दृष्टान्त उपलब्ध होते हैं । सेठ जमनालाल को लिखे एक पत्र में उन्होंने मीराबाई द्वारा जीव गोस्वामी के नाम प्रेषित पत्र का उत्तम दृष्टांत दिया है ।[३]

इस प्रकार मनीषियों के पत्रों में बड़े मधुर, मनोहर एवं मनोरंजक दृष्टान्त प्राप्त होते हैं ।

---

१ "द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र" (१९५८), पृ० ३ ।

२ "प्रेरक साधक" (१९७१), पृ० ५४० ।

३ "विनोबा के पत्र बजाज परिवार के नाम" (१९६६), पृ० ९ ।

निष्कर्ष :

पत्र-साहित्य में शिल्प और शैली का अनुशीलन करने के पश्चात् निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि पत्र कोई अपरिवर्तनशील तत्व नहीं है । विषय और शैली दोनों ही दृष्टियों से इसके बहिरंग और अंतरंग रूप में युग-भेद और व्यक्ति-भेद के अनुसार नये प्रयोग होते रहे हैं । आधुनिक युगीन पत्र-साहित्य में, विशेषत: साहित्यकारों के पत्रों में, अपेक्षाकृत अधिक नवीनता और विविधता दृष्टिगत होती है । यद्यपि साहित्यकारों ने अपने पत्रों को साहित्य समझकर नहीं लिखा है, तथापि इनमें उनकी सहजात प्रतिभा के स्पष्ट दर्शन होते हैं ।

पत्रों की भाषा लेखक की अपनी उस समय की मन:स्थिति और भावग्राहक के साथ उसके सम्बन्ध के अनुरूप होती है । प्राचीनकालीन पत्रों में अनेक जनपदीय बोलियों का स्पर्श मिलता है । आधुनिक युग के समाज-सेवियों तथा राजनीतिज्ञों के पत्रों की भाषा सुबोध, सरल और स्पष्ट है । साहित्यकारों के पत्रों की भाषा में सरलता, स्वाभाविकता और प्रवाहिता के साथ कहीं-कहीं अलंकार-विधान भी मिलता है ।

इस प्रकार विषय और शैली सम्बन्धी जो विशेषताएं हमें साहित्य की अन्य विधाओं में प्राप्त होती हैं, प्राय: वे सभी विशेषताएं पत्र-साहित्य में भी मिल जाती हैं । परन्तु पत्र-साहित्य में प्राप्त शिल्पगत विशेषताओं का महत्व अन्य विधाओं से कहीं अधिक इसलिए है कि ये विशेषताएं स्वत: स्फुरित हैं ।

दूसरे शब्दों में साहित्यकारों एवं विभिन्न क्षेत्रों के मनीषियों को अपनी साहित्यिक रचनाओं और अपने लेखों में भाषा, शैली आदि का सयत्न प्रयोग करना पड़ता है, किन्तु पत्रों में साहित्यिकता स्वयमेव प्रवेश कर जाती है । यही कारण है कि पत्र-साहित्य अन्य साहित्यिक कृतियों से कहीं अधिक आकर्षक और आनन्ददायक होता है ।